अन्तर के प्रतिबिम्ब

आचार्य श्री नानेश

□

सकलन-सम्पादन

मुनि ज्ञान

□

प्रकाशक

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

बी का ने र

अन्तर के प्रतिबिम्ब

4646

□ प्रवचनकार
आचार्य श्री नानेश

□ संकलन सम्पादन
मुनि ज्ञान

□ प्रकाशक
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, रामपुरिया मार्ग,
बीकानेर-३३४००१ (राजस्थान)

□ मूल्य . बारह रुपये
संस्करण : १९८५

□ मुद्रक
फ्रेण्ड्स प्रिण्टर्स एण्ड स्टेशनर्स
जौहरी बाजार, जयपुर-३०२००३

अन्तःस्फूर्त

पूरे विश्व के दृश्य और अदृश्य, सभी तत्त्वो का समावेश मुख्यतया दो ही तत्त्वो मे हो जाता है– एक भौतिक और दूसरा अभौतिक। अर्थात् एक जड़ और दूसरा चैतन्य।

इन दो तत्त्वो के सयोग से ही विश्व मे अगणित विचित्रताएँ/विशेषताएँ परिलक्षित हो रही हैं। दृश्यमान जितने भी तत्त्व हैं वे सब जड तत्त्व के ही विभिन्न रूप हैं उन जड़ तत्त्वो के मध्य, कार्यकारी शक्ति है विज्ञानवान् आत्मा। आत्मा की मौलिकता अदृश्य होते हुए भी वह अनन्त शक्ति सम्पन्न है। जिस शक्ति के ही यत्किचित् विकास ने पूरे वैज्ञानिक जगत को ही नही प्रायः सारी मानव-जाति को आश्चर्यचकित कर दिया है। किन्तु आज के अधिकाश मानवो की दृष्टि अन्तरग की ओर न होकर बहिरग-बाह्य विषयो से ही सम्बन्धित बनी हुई है। भौतिकी बाह्य तत्त्वो का प्राकार-अभौतिक आत्मा को इस प्रकार जकड़े हुए हैं कि बिना अन्तरावलोकन के, अनन्त-शक्ति/अनन्त शान्ति का साक्षात्कार नही हो सकता और अन्त.प्रवेश के बिना मानव शाश्वत शाति का एक बिन्दु भी प्राप्त नही कर सकता।

वर्तमान मे मानव की खोज अधिकाश रूप से अन्तरग से उपेक्षित होकर बाह्य तत्त्वो की ही हो रही है, परिणामस्वरूप भौतिक-यत्रो का विकास होने पर भी शाति की उपलब्धि नही हो पा रही है।

अन्तरग का अनुभूतिगत ज्ञान, साधना की गहराइयो मे प्रवेश पाने पर ही हो सकता है। अनुभूति की अतल गहराइयो से उद्भूत ज्ञान, निश्चय ही स्व-पर के जीवन मे आश्चर्यजनक परिवर्तन लाने वाला होता है। साधना-गत अनुभूति के बिना अभिव्यक्ति प्रभावशाली नही बनती। साधना ही साधक की अभिव्यक्ति को वह तेजस् प्रदान करती है कि जिससे जन-जन की सुषुप्त चेतना जागृत हो उठती है।

ऐसी ही साधना की अभिव्यक्ति है—समता-समीक्षण साधना के ज्वलन्त आदर्श, प्रशान्त चेता, युगदृष्टा आचार्य श्री नानेश की।

जिनकी साधना अन्तरग की गहराइयो को छूती है तो उनकी अभिव्यक्ति जन-जन के अन्तरंग को छू लेती है।

प्रस्तुत कृति मे उस अभिव्यक्ति का ही अति सक्षिप्त मे सकलन-सम्पादन किया गया है। जड़त्व के प्राकार को भेद कर चैतन्यत्व की अभिव्यक्ति के उपाय ही विविध रूप मे प्रस्तुत हैं। सक्षिप्तीकरण के युग मे विन्दु मे सिन्धु के प्रतीक "अन्तर के प्रतिवम्व" भव्यात्माओ की स्वात्मानुलक्षी साधना मे सहायक वने, यही अभीप्सा है।

राजेन्द्र नगर,
वोरीवली पूर्व,
वम्बई।

—मुनि ज्ञान

• □ •

❁ प्रकाशकीय ❁

हमारा चतुर्विध सघ परम सौभाग्यशाली है कि जिसको क्रातिकारी महापुरुषो का दिव्य सदेश, अमृतोपम उपदेश श्रवण करने को मिलता है। चतुर्विध संघ के दो सघ निवृत्ति प्रधान, सयम जीवन की अनुपालना मे अनुरक्त रहते है। उनकी सयम जीवन की अनुपालना नीरस एव शुष्क नही होती। वे उसमे जीवन के वास्तविक आनन्द की अनुभूति करते हैं और साथ ही साधनागत अन्त स्फुरणाओ से जन-जन को जागृति का उपदेश देते हैं। उनके उपदेशो का जीवन्त प्रभाव जन मानस पर अमिट रूप मे पडता है। क्योकि वे जैसा कहते है वैसा अनुभव करते है और जो कहते हैं उसका अनुपालन करते हैं। उनकी कथनी और करणी की समानता का अनूठा ही प्रभाव पडता है।

परम श्रद्धेय, जिन शासन प्रद्योतक, समता दर्शन प्रणेता, धर्म-पाल प्रतिबोधक, समीक्षण ध्यान योगी, परम पूज्य आचार्य प्रवर १००८ श्री नानालालजी म सा. जैन क्षितिज के एक समुज्ज्वल सितारे हैं। आपके अमृतोपम उपदेशो से जन-जन मे एक सात्विक आध्यात्मिक क्राति घटित हुई है। आपके उपदेशो का ही प्रभाव कहा जायेगा, कि इस विषमताभरी दुनिया मे दो सौ से अधिक स्त्री-पुरुषो ने राग से हटकर विराग, भोग से हटकर योग, प्रेय से हटकर श्रेय का मार्ग स्वीकार कर सर्वव्रती अणगार जीवन को अगीकार किया है। इसी तरह हजारो ने श्रावक जीवन एव लाखो ने वीतराग देव के सन्मार्ग को प्राप्त कर अपने जीवन को उन्नत बनाने का संकल्प किया है।

आप एक निस्पृह सत हैं। लोकेषणाओ एव जन आकाक्षाओ के व्यामोह मे पड़कर आप अपने नियम मर्यादाओ को पीठ नही देते बल्कि सूक्ष्म वीतरागता का साकार रूप देना अपने जीवन एव अपने चतुर्विध सघ के लिए अनिवार्य समझते हैं। वीतराग देव की आज्ञा

के विपरीत एक कदम धरना भी पसन्द नही करते। इसी दृढ श्रद्धा श्रौर अटल आस्था के साथ आप युग की चुनौतियो का मुकाबला करते हैं। आपके प्रवचनो मे जीवन की सर्वांगीणताश्रो के दर्शन होते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक मे श्रापके विराट प्रवचनो का सारसक्षेप, सकलन, सपादन का कार्य हमारे सघ के उदीयमान प्रज्ञा पुज विद्वद्वर्य श्री ज्ञान मुनि जी ने किया है। मुनिश्री ने श्रहमदाबाद वर्षावास मे परम पूज्य श्राचार्य प्रवर द्वारा प्रदत्त प्रवचनो की एक पुस्तक का संपादन कर समीक्षण ध्यान साधना के साहित्य श्री मे अभिवृद्धि की। उन्ही प्रवचनो एव अन्यान्य प्रवचनो का आलोडन-विलोडन कर उनका सार सक्षेप नवनीत 'श्रन्तर के प्रतिबिम्ब' इस पुस्तक मे सकलित व सपादित किया है तदर्थ सघ श्राचार्य प्रवर की अनन्त उपकृति एव मुनि श्री के अथक परिश्रम का हार्दिक कृतज्ञ है।

हमारा सघ सत्साहित एव जीवन विकासोन्मुखी कृतियो के प्रकाशन के लिए कृत सकल्प है।

शात क्राति के अग्रदूत स्व श्राचार्य श्री गणेशीलालजी म. सा. की स्मृति मे श्री अ. भा साधुमार्गी जैन संघ ने श्री गणेश जैन ज्ञान भण्डार की स्थापना की। ज्ञान भण्डार मे श्रनेकानेक प्रकाशित एव हस्तलिखित ग्रन्थो का सग्रह हुआ हैं। हस्तलिखित अप्रकाशित ग्रन्थो का सचयन कर श्री अ भा. साधुमार्गी जैन साहित्य समिति सर्वजन हितार्थ प्रकाशन करती रही है।

इसी सकल्प की क्रियान्विति मे इस कृति को भी श्री गणेश जैन ज्ञान भण्डार से प्राप्त कर प्रकाशित करने मे हार्दिक श्रात्म सतुष्टि का श्रनुभव कर रहा है। प्रस्तुत पुस्तक की हमारी श्रर्थ सहयोगी श्रीमती मोहन वाई मेहता धर्मपत्नी श्री चुन्नीलालजी मेहता, वम्वई के हम हृदय से श्राभारी है। प्रकाशनादि कार्यो के सपादन मे डॉ नरेन्द्र भानावत ने जो महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है तदर्थ वे धन्यवाद के पात्र हैं।

गुमानमल चोरडिया
सयोजक
श्र भा. साधुमार्गी जैन साहित्य समिति

अर्थ सहयोगी

श्रीमती मोहनबाई मेहता

प्रस्तुत पुस्तक 'अन्तर के प्रतिबिम्ब' के प्रकाशन मे हमे श्रीमती मोहनीबाई चुन्नीलाल मेहता का प्रशस्त अर्थ सहयोग प्राप्त हुआ है । ५८ वर्षीय श्रीमती मोहनबाई अपने अनन्य धर्मानुराग और सेवा कार्यों मे उदार सहयोग की भावना हेतु सुविख्यात हैं । आपने माध्यमिक स्तर तक शिक्षा प्राप्त की और बालिका शिक्षा के कार्यों मे सदैव गहरी अभिरुचि प्रकट करते हुए सहयोग प्रदान करने मे अग्रणी रही । भवन निर्माण जैसे जटिल व्यवसाय के निपुण सचालन पूर्वक आपने अपनी व्यावसायिक सूझबूझ का परिचय दिया । सन् १९६९ से ही आप भारतीय राष्ट्रीय काग्रेस की सक्रिय सदस्य हैं ।

आप श्री अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन महिला समिति की उपाध्यक्षा, महिला विद्या मन्दिर कोलाबा की अध्यक्षा, मोहनबाई चुन्नीलाल मेहता बालिका विद्यालय काला चौकी की न्यासी, शैक्षिक और चिकित्सा सुविधाएँ सुलभ कराने वाले चुन्नीलाल मेहता चैरिटेबल ट्रस्ट की न्यासी, अनेकानेक नवरात्रि और गणेश उत्सव मण्डलो और महिला सेवा सस्थानो से सम्बन्धित श्रीमती मोहनबाई का बहुआयामी व्यक्तित्व सेवा और समर्पण के ताने-बाने से बुना गया है ।

आपकी श्रद्धा और उदारता समाज और राष्ट्र के विकास मे महत्ती भूमिका निभाएगी, हम आश्वस्त हैं ।

अनुक्रमणिका

१. बन्दर की पकड़

एक बन्दर घरो की अट्टालिकाओ पर इधर से उधर छलाग लगा रहा था। लगाते २ उसने एक मकान की छत पर छोटे मुँह वाली मटकी मे चने (भू गड़े) पडे हुए देखे, जिसे देखकर वह ललचा गया, उन्हे पाने के लिये बन्दर ने मटकी मे हाथ डाला और मुट्ठी भर ली। लेकिन जब वह मुट्ठी बाहर निकालने की कोशिश करता है तो वह निकल ही नही पाती है, तब वह चीची करता है।

जब हाथ मटकी मे नही डाला था, मुट्ठी नही भरी थी। तब सुखी था, स्वतत्र था। कोई टेन्शन नही था। लेकिन ज्योही मुट्ठी भरी और उसे नही निकाल पाने के कारण दु खी हो गया, परतत्र हो गया, मानसिक टेन्शन से ग्रस्त हो गया।

बधुओ! वह तो विवेक विकल बन्दर था, लेकिन आज के अधिकाश मानव क्या कर रहे हैं? क्या वे भी इसी प्रकार से तो मुट्ठी नही भर रहे हैं? आज धन की पकड़, परिवार की पकड, न मालूम कितनी अधिक बढ़ती जा रही है। जब तक यह पकड रहेगी, तव तक कोई भी मानव सुखी नही हो सकता।

बंदर की एक पकड ने ही उसे दु खी बना दिया तो आज के पुरुषो ने न मालूम कितनी पकड कर रखी है।

सुखी बनने के लिये भौतिकता की पकड छोडनी होगी।

□□

२. जैन और जैनत्व

आज के बुद्धिवादी वर्ग में यह आम चर्चा वन गई है कि जैन धर्म के सिद्धान्त इतने साइन्टिफिक होते हुए भी उसके अनुयायी वहुत कम हैं, यह कैसे ?

इस वात का स्पष्टीकरण मैं स्वर्गीय गुरुदेव गणेशाचार्य के साथ विनोवा भावे की चर्चा से स्पष्ट कर देना चाहता हूं।

आचार्य श्री गणेशीलालजी म० सा० के साथ चर्चा करते हुए विनोवा भावे ने वतलाया—आचार्यश्री ! आप यह सोचते होगे कि जैन धर्मानुयायी वहुत कम हैं। हाँ, नाम मात्र के जैनानुयायी कम हो सकते हैं किन्तु जैन-सिद्धान्त—जैनत्व पूरे विश्व मे दूध में मिश्री की तरह फैलता जा रहा है। जिस प्रकार दूध मे मिश्री घुलकर उसे मीठा वना देती है, तव मिश्री का स्वतत्र अस्तित्व दिखलाई नही देता।

ठीक इसी प्रकार जैनत्व जैन-धर्म के सिद्धान्त अहिसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, स्याद्वाद आदि इतने ही अधिक फैलते जा रहे हैं। आज विश्व के प्रत्येक राष्ट्र के मूलभूत नियम, इन्ही सिद्धान्तो पर वने हैं। हमे प्रत्यक्ष रूप से उन सिद्धान्तों की स्थिति परिलक्षित नही हो रही है। किन्तु यदि अहिसा, सत्य आदि को राष्ट्रीय नियमो से निकाल दिया जाय तो कोई भी राष्ट्र एक क्षण के लिये भी व्यवस्थित नही चल सकता।

अत· स्पष्ट है कि जैनत्व की दृष्टि से तो जैन दर्शन विश्व व्यापक है। हाँ जैनानुयायी अल्प परिलक्षित हो सकते हैं। □□

३. संयोग-उपयोग

एक व्यक्ति के पास भोजन की सारी सामग्री उपलब्ध थी। आटा, दाल, घी, सब पर्याप्त मात्रा मे थे। उसे बहुत तेज भूख लग रही थी। वह जोर २ से चिल्लाने लगा—

मुझे भूख लग रही है—मुझे भूख लग रही है।

उसकी यह स्थिति देखकर उसके एक सुज्ञ मित्र ने कहा—अरे, तुम चिल्ला क्यो रहे हो ? यदि तुम भूखे हो तो तुम्हारे पास भोजन की सारी सामग्री पड़ी हुई है। जब सारी वस्तुओ का सयोग है तो इसका उपयोग क्यो नही करते ?

लेकिन वह व्यक्ति बोला—मेरे पास सयोग है, किन्तु मुझे इसका उपयोग करना नही आता।

इसीलिये तुम भूखे मर रहे हो, मित्र ने कहा।

क्षुधा-तृप्ति के लिये सयोग के साथ उपयोग भी होना चाहिये।

वर्तमान की कुछ स्थिति भी ऐसी ही बन रही है। आज प्राणी को श्रेष्ठतम वस्तु, मानव तन प्राप्त हो गया है। आवश्यकता है, इस सयोग की सही दिशा मे उपयोग करने की।

केवल सुख के चिल्लाने मात्र से सुख प्राप्त नही हो सकता।

□□

४. पानी सभी का है

सरिता मे प्रवाहित शीतल नीर, किसी व्यक्ति विशेष से ही अपना सबध स्थापित नही करता।

ऐसा कभी नही होता कि पानी, सम्राट के पीने पर तो उसकी प्यास शात कर दे और रक के पीने पर उसकी प्यास शात न करे। श्रीमंत पीए तो उसकी प्यास तो बुझ जाए और निर्धन की न बुझे।

पानी में ऐसा कोई पक्षपात नही होता। उसको पीने वाला कोई भी व्यक्ति क्यो न हो, मानव हो या पशु, रक हो या राजा, धनी हो या निर्धन, वह सबकी प्यास तृप्त करता है।

ठीक इसी प्रकार अर्हंत-सिद्धान्त अहिंसा आदि सार्वजनीन, सार्वभौमिक हैं। ये सिद्धान्त किसी व्यक्ति विशेप या वर्ग विशेष से आवद्ध नही है। कोई भी व्यक्ति इन्हे अपना सकता है। जो भी व्यक्ति इन सिद्धान्तों को व्यवस्थित रूप से अपनाता है। निश्चित रूप से उसे जीवन मे शीतल सुखद अनुभूति होने लगती है।

□□

५. आधुनिक शिक्षा

आज के आधुनिक युग मे शिक्षा का बहुत प्रचार-प्रसार हो रहा है। सरकार भी अपनी सपत्ति का बहुत कुछ व्यय इस दिशा में कर रही है।

इस आधुनिक शिक्षा को प्राप्त करके कई युवक ग्रेज्युएट होते जा रहे हैं और बड़े-बडे पदो पर कार्य भी कर रहे हैं।

जिस प्रकार बडे-बडे पदो पर कार्य करने से पहले शिक्षण-प्रशिक्षण लेते हैं। वर्षों तक अध्ययन करने के बाद ग्रेज्युएट बन पाते हैं।

तो क्या मैं आपसे पूछूँ कि जब आपने सतति प्रजनन प्रारम्भ किया, उससे पूर्व पिता के कर्त्तव्यो का अध्ययन किया ? महिला ने माता बनने से पूर्व अपनी सतति के प्रति कर्तव्यो का अध्ययन किया ? बतलाइये क्या लिया है ऐसा कोई प्रशिक्षण ?

अरे आप सब मौन क्यो हो गए ? बस भूल, मूलतः यही से हो रही है। अपने कर्तव्यो का बोध प्राप्त करने के पहले ही किये जाने वाला सम्बन्धित कार्य हानिकारक होता है। आज स्थिति यह बनती जा रही है। माता-पिता को ही जब अपनी सतति के प्रति क्या कर्तव्य होते हैं, इसका भान नही है तो फिर उनकी सतति को अपने माता-पिता के प्रति क्या कर्तव्य होने चाहिये, इसका बोध कैसे हो पाएगा ?

देवकी महारानी को पुत्रो के प्रति माता का क्या कर्तव्य होता है, इस बात का पूर्ण विवेक था। इसी का परिणाम आया कि महारानी को दु खित देखते ही श्रीकृष्ण का हृदय भी दुःखित हुआ और उन्होने हर कीमत पर माता के दु ख दूर करने का निर्णय किया।

श्रवणकुमार को अपने कर्तव्य का बोध था। इसी का परिणाम था कि उसने अपने माता-पिता को कावड मे बिठाकर भी यात्रा करवाई।

माता मदालसा ने अपने पुत्रो के प्रति अपना कर्तव्य निभाया था। परिणामस्वरूप महारानी मदालसा की इच्छानुसार सभी पुत्र यशस्वी बने थे।

अत· पारिवारिक जीवन सुखमय बनाने के लिये जनक-जननी, पुत्र-पुत्रियो को अपना-अपना कर्तव्य बोध करना अत्यन्त आवश्यक है।

६. मनुष्य हो या पशु

आज मनुष्य लड़ क्यो रहा है ? एक दृष्टि से देखा जाय तो आज अधिकाश मनुष्यो मे सही ज्ञान नही है। मनुष्य-जन्म तो पा लिया, परन्तु मनुष्य क्यो है, क्या है इसका ज्ञान न होने से अपने ही भाइयों से टकरा रहा है, एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को शत्रु समझ रहा है—यह मेरा प्रतिपक्षी है, दुश्मन है। जैसे एक व्यक्ति दूसरे को दुश्मन समझता है, वैसे ही दूसरा तीसरे को और तीसरा चौथे को समझता है। मनुष्य की कलुषित मानसिक वृत्ति ही उसकी दुश्मन है। ऐसा करते-करते मनुष्य शाति से रहना भूल जाता है। यहाँ तक कि परिवार मे भी अशातिमय द्वन्द्व पैदा हो जाता है और लोग भेद-अभेद की दृष्टि को छोड़कर लडने लग जाते हैं। इस तरह लड़ाई झगडे मे यह जिन्दगी कुत्ते, बिल्ली की तरह व्यर्थ ही चली जाती है। आप शाति से चिन्तन कीजिए, यह जिन्दगी कुत्ते बिल्ली की तरह बिताने को नही मिली है। यदि छोटी-छोटी बातो के लिए मन मे गाँठ बाँधकर चले और व्यक्ति, परिवार, समाज के हित को ध्यान मे नही रखा तो क्या यह भी कोई जीवन है ? यह वृत्ति तो पशुओ मे भी नही होती। वे भी टोली बनाकर चलते हैं। उनमे द्वेष और ईर्ष्या की आग नही सुलगती। उनमे प्राय: प्रेम और स्नेह रहता है। एक ही टोले के पशुओ मे कितनी हमदर्दी है, उसकी कल्पना जगली पशुओ को देखकर करें तो आप आश्चर्य मे पड जाएँगे।

□□

७. भाग्य और पुरुषार्थ

अधिकाश मानवो की यह कल्पना होती है कि मैं कुछ नही कर सकता, होता वही है जो विधाता ने लेख लिख दिया है।

इन विचारो के कारण मानव की नव-नवोन्मेषिनी प्रतिभा कु ठित होती चली जाती है। अभिनव आविष्कारो के द्वार अवरुद्ध हो जाते हैं। उन्नति के पथ पर एक बहुत बडी चट्टान आ खडी होती है।

भोजन की सारी सामग्री उपलब्ध है, लेकिन भोजन करने वाला कवल को मुँह मे लेकर दाँतो से चबाकर जब तक पेट मे नही उतारता है, तब तक उसकी भूख शात नही हो सकती। इतना पुरुषार्थ उसे करना ही होता है। जीवन के हर क्षेत्र मे पुरुषार्थ की अनिवार्य आवश्यकता होती है। जीवन रूपी रथ के दो पहिये हैं। एक तरफ अपना कर्म (भाग्य) है तो दूसरी ओर पुरुषार्थ। इन दोनों के सयोग से ही जीवन-रथ निश्चित दिशा की ओर गतिमान हो सकता है।

केवल भाग्याश्रित मानव कभी भी उन्नति के चरम छोर को नही छू सकता। उन्नति के पथ पर बढने के लिये इन नैराश्यपूर्ण विचारो से हटकर, सबल पुरुषार्थ के साथ आगे बढिये, तब अवश्य ही सुख का अतुल खजाना प्राप्त होगा।

□□

८. घड़ी का समभाव

यह घड़ी किसी का ध्यान नही रखती। कौन बोल रहा है, कौन नही बोल रहा है? कौन क्या कर रहा है और कौन क्या नही कर रहा है? वह तो अपनी गति से निराबाध चलती रहती है।

जिस प्रकार इस घडी मे समभाव की स्थिति परिलक्षित होती है। यह मानवो के क्रियाकलापो से निरपेक्ष हो अपने ही लक्ष्य की ओर गतिशील रहती है। ठीक इसी प्रकार सभी मानवो मे समभाव की स्थिति आ जाय तो जीवन की गति निरन्तर बढती रहेगी।

□□

९. वीतराग वाणी

आकाश से बरसने वाला पानी किसी व्यक्ति विशेष का नही होता। वह ऊँचे-नीचे सभी स्थलों पर समभाव के साथ बरसता है।

ठीक इसी प्रकार वीतराग वाणी भी किसी व्यक्ति विशेष से या सम्प्रदाय विशेष से आबद्ध नही है, वरन् सभी के लिये है। पतित-पाविनि प्रभु वाणी का वर्षण सभी के लिए समान रूप से होता है। ग्रहण करने वालो की भिन्नता के कारण ही प्रभु वाणी की परिणति मे भिन्नता आती है।

मेघ पानी मे, जो स्वच्छता-निर्मलता होती है उससे भी विलक्षण प्रकार की स्वच्छता-निर्मलता वीतराग वाणी मे होती है। □

१०. उत्तम व्यक्ति

उत्तम व्यक्ति वही होता है, जिसके आचार-विचार और उच्चार शुद्ध हो। प्रभु महावीर की दृष्टि मे जन्मना जाति का विशेष महत्त्व नही रहा है। प्रभु ने कर्मणा दृष्टि से ही उच्चता-निम्नता का वर्गीकरण किया है।

जैसा कि उत्तराध्ययन सूत्र मे प्रभु ने वतलाया है—

कम्मुणा बंभणो होई, कम्मुणा होई खत्तिओ
कम्मुणा वइसो होई, कम्मुणा होई सुद्दो

कर्म आचरण से ही मानव ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की कोटि मे आते है। इसीलिये प्रभु महावीर के धर्मशासन मे अग्नि-भूति जैसे महान् क्रियाकाण्डी ब्राह्मण, मेघकुमार आदि क्षात्र तेज-युक्त क्षत्रिय, धन्ना सेठ जैसे ऋद्धि-समृद्धि सम्पन्न वणिज और हरि-केशी जैसे हरिजन भी सम्मिलित थे। अर्थात् सभी वर्ग के पुरुषो ने साधुत्व जीवन स्वीकार किया था।

□□

११. क्या कहा-वह करो

महापुरुषो ने क्या किया, उसे हमे नही दुहराना है, किन्तु महापुरुषो ने क्या कहा है, उस ओर ध्यान देना है।

पिता अनेक दु खो की अनुभूति के बाद जो सत्य-तथ्य पाता है, वही पुत्र को बताता है। लेकिन पुत्र उस सत्य-तथ्य को स्वीकार न कर पितृ अनुसरण करता है तो वह भी पिता के आदिमकालीन दु:खद जीवन मे चला जाता है। ऐसा पुत्र कभी भी सुखी नही वन सकता।

लक्ष्य तक पहुँचने के लिये अनुभूतिपूर्वक जो वात महापुरुषो ने कही है, सच्चे भक्त को उसी का आचरण करना चाहिये।

वैज्ञानिको ने क्या अनुसधान किया है आप उस ओर नही देखते, किन्तु उन्होने क्या आविष्कार किया उसका उपयोग करते हैं।

वैसे ही अध्यात्म जीवन मे अध्यात्म के वैज्ञानिको ने कैसे अनुसधान किया है, उस ओर न जाकर उन्होने जो आविष्कार किया है उसे अपनाना ही अभीष्ट है। □

१२. पतितोद्धार

पतितोद्धार—धर्मपाल समाज रचना का मर्यादित काम करते हुए मैंने कभी भी यह नही सोचा था कि इससे मेरा कोई नाम हो। मेरा तो मुख्य लक्ष्य यही था और है कि जब प्रभु महावीर के सान्निघ्य मे हरिकेशी जैसे हरिजन का भी उद्धार हो सकता है तो क्यो नही इन पतित कहलाने वाले भाइयो का उद्धार हो सकता है ? मानवता के नाते मैं उनके पास पहुँचा और उन्हे प्रभु महावीर की देशना का पान कराया।

लोगो में चमत्कारिक परिवर्तन हुआ। हजारो की जनसख्या मे लोग व्यसन मुक्त हो, मानवता के गुणो से भूपित होने लगे।

अगर आप सभी प्रभु महावीर के सही माने मे अनुयायी है तो आप भी जन्मना जाति वर्ग से हटकर कर्मणा सिद्धान्त को अपनाने का प्रयास करें। भाई-भाई से प्रेम करना सीखें और मानवता का भव्य प्रसंग उपस्थित करें।

□□

१३. चौराहा

नगर के चौराहे पर खडा व्यक्ति जिधर जाना चाहे उसी रास्ते से जा सकता है। उसके लिए किसी प्रकार का अवरोध नही आता। ठीक इसी प्रकार आत्मा के लिए भी मानव जीवन एक चौराहा है। जिस चौराहे से वह चार गति—नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव किसी मे भी जा सकता है। यही नही सर्व बन्धनो से विनिर्मुक्त होकर वह मोक्ष मे भी जा सकता है।

आप सभी ऐसे ही चौराहे पर खड़े हैं, जिधर जाना चाहे उधर जा सकते हैं। अभी अवसर आपके हाथ मे है। आप अपने अशुद्ध आचरण से निम्न गति मे भी जा सकते हैं और शुद्ध आचरण से उन्नत गति मे भी जा सकते हैं। आजमाइये अपने पुरुषार्थ को और शुद्धाचरण के पथ पर आगे बढिये।

पुनरपि जनन पुनरपि मरण,
पुनरपि जननी जठरे शयनं।

अर्थात् बार बार जन्म लेना, बार-बार मरना और बार-बार माता के गर्भ मे आना, आखिर क्यो हो रहा है? जिस कार्य को करना हम नही चाहते उसी कार्य को विवश हो पुनः-पुन: क्यो करना पड रहा है हमे? आखिर क्या कारण है इसका? जरा विचार करिये, अपने अन्तर्मन मे, हम चाहते हैं कुछ और ही और हमारा आचरण होता है किसी और ही प्रकार का। जन्म-मरण, जननी, जठर शयन से मुक्ति पाने के लिए तदनुरूप पुरुषार्थ करना होगा। जिस दिन हम सत्पुरुषार्थशील बन जायेंगे उस दिन निश्चित रूप से इस पुनः-पुन. के आने वाले (ससार) चक्कर से हटकर मुक्ति को प्राप्त कर लेगे।

□□

१४. धर्म-आत्मा का मौलिक स्वरूप

धर्म का स्वरूप आत्मा के मौलिक स्वरूप से भिन्न नही है। जिस प्रकार पानी की शीतलता पानी का मौलिक गुण है, वह शीतलता पानी से भिन्न नही है।

अग्नि सयोग से कुछ समय के लिए उष्णता आ भी जाय पानी मे, मगर सयोग हटते ही पुनः शीतलता भी आ जायेगी।

अग्नि-सयोगवत् ही मानव जीवन मे कषाय का सयोग होता है, परिणाम-स्वरूप आत्मा का मौलिक गुण धर्ममय होते हुए भी वैकारिक एव वैभाविक बन आता है।

धर्म के मौलिक स्वरूप को आत्म-उजागर करने के लिए काषायिक भावो को हटाना होगा। जिस दिन कषाय की वैभविक पर्ते हट जायेगी उस दिन आत्मा का मौलिक-स्वरूप (गुण) उजागर हो जायेगा।

□□

१५. भंग से विनाश

भग भी एक ऐसा विकृत तत्त्व है, जो शरीर के भीतर जाने के वाद शरीर को उन्मत्त (वेभान) वना देता है। यह उन्मत्तता इतनी अधिक वढ़ जाती है कि वह अपने-पराये का भेद भी भूल जाता है।

गंगापुर की एक वहिन को जवरदस्ती फोर्स करके किसी ने भंग पिला दी। घर पहुँचते-पहुँचते नशा चढा उसे। वेभान हुई माँ से अनभिज्ञ वालक रोटी मागता है। नशे में चूर माँ ने उस वच्चे को पैरो के वीच पकडकर मस्तिष्क मे लोह-कील ठोक दी, वच्चे का प्राणान्त हो गया...........।

वन्धुओ, विचार करिये। भग की यह विकृति मस्तिष्क के ज्ञान ततुओ को इतना अधिक विकृत वना देती है कि जिससे उनकी क्षीर-नीर विवेकिनी वुद्धि विलुप्त सी हो जाती है। □

१६. ज्वर एक-पथ्य अलग-अलग

ज्वर ग्रस्त चार व्यक्ति किसी वैद्य के पास उपचार कराने पहुँचे । चारो व्यक्तियो का ज्वर बराबर १०१ डिग्री था । लेकिन डॉक्टर ने सभी का अनुसधान करने के बाद चारो व्यक्तियो को औषध देते हुए पथ्य के लिए अलग-अलग निर्देशन दिये । एक व्यक्ति को खाने का निषेध किया, दूसरे को हल्का भोजन करने के लिये कहा गया । तीसरे व्यक्ति को पौष्टिक भोजन करने के लिये कहा । चौथे को सब कुछ खाने के लिये कहा । चारो को बडा आश्चर्य हुआ । ज्वर एक समान होते हुए भी यह अन्तर क्यो ? डॉक्टर ने यह अन्तर आन्तरिक अनुसन्धान के साथ दिया था ।

ठीक इसी प्रकार दोष एक समान लगते हो, लेकिन प्रायश्चित देने वाले आन्तरिक अनुसन्धान के साथ ही एक ही प्रकार के दोष मे अलग-अलग प्रायश्चित दे सकते हैं । प्रायश्चित दोष के आधार पर नही अपितु आलोचना एव आन्तरिक अनुसन्धान पर दिया जाता है ।

□□

१७. कपूर की टिकिया

मनुष्य जीवन की क्षण भगुरता सर्वविदित है । हर क्षण हर पल अमूल्य क्षण समाप्त होते जा रहे हैं । कपूर की टिकिया को कितनी ही सुरक्षित रखने का प्रयास किया जाय किन्तु वह उड़ती जाती है और एक दिन पूर्णतः समाप्त हो जाती है । उसकी इस उडान को कोई रोक नही सकता, ठीक वैसे ही मानव जीवन की यह आयुष्य उडती जा रही है । उडते-उडते एक दिन ऐसा आयेगा वह परिपूर्णतः उड जायेगी अर्थात् मृत्यु हो जायेगी । आयुष्य को कितना ही सुरक्षित स्थायी रखने का प्रयास किया जाय, वह रह नही सकती ।

जीवन के इस शाश्वत सत्य को जानकर के भव्य पुरुष को चाहिये कि जब तक मन-वचन-काया की ऊर्जा क्षीण नही होती उससे पूर्व ही सत्पुरुषार्थ द्वारा आत्मिक जागृति लाने का प्रयास करे । □

१८. ध्यान का फल

वर्तमान मे अधिकांश व्यक्ति सोचते है कि ध्यान लगाते-२ हमने काफी समय व्यतीत कर दिया, परन्तु आज तक उससे कुछ भी नही मिला। लेकिन मैं सोचता हूँ कि क्या वे जमीन मे बीज बोते ही तत्काल उसका फल लेना चाहते है। जब दुनिया मे साधारण से साधारण बीज भी समय पर फल देता है, तब आज का मानव यह चाहे कि हम अभी ध्यान करे और आज ही हमे दिव्य फल मिल जाएँ तो यह एक हँसी की ही बात होगी।

□□

१६. अन्तःदर्शन

आज का आधुनिक मानव अनेक प्रकार की उलझनो मे उलझा हुआ है और अनेक आतरिक स्थितियो मे अपनी अन्तरचेतना का हनन कर रहा है। इन विकट परिस्थितियो मे यदि कोई प्रकाश-स्तम्भ है, यदि कोई अवलम्बन है, यदि इस जीवन को आगे बढाने के लिये कोई आदर्श है, तो वे सिद्ध परमात्मा ही मुख्य हैं। उन परमात्मा के स्वरूप को हम दूर से न देखें परन्तु अपनी अन्तरग स्थिति से देखे। आश्चर्य इस बात का है कि उस सन्निकट स्वरूप को भी आत्मा देख नही पा रही है और आत्मा से कोसो दूर रहे तत्त्व को वह अपने समीप मान रही है, यह बड़ी विचित्र दशा है। □

२०. बाहर नहीं, भीतर देखो

जिसके भीतर पवित्र निधि भरी हुई है और जिसके लिए बाहर जाने की आवश्यकता ही नही है, उस पर तो व्यक्ति दृष्टि नही डाल रहा है और जहाँ निधि नही है तथा निधि का सिर्फ भ्रम हो रहा है उसके पीछे वह मृग की तरह भटकता है। जैसे कस्तूरी मृग को अपनी नाभि मे से कस्तूरी की सुगध आती है, तब उसका मन छटपटाने लगता है कि यह सुगध बड़ी अच्छी है, कहाँ से आ रही है, मैं अपनी शक्ति लगाकर उस खान को खोज लूँ और तब झाड़ियो मे इधर-उधर छलाग लगाता हुआ वह मृग जगल मे भटकता है। परन्तु झाडियो अथवा जगल मे वह सुगन्ध नही मिल पाती, वह नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे अथक परिश्रम करके आखिर मे थक जाता है और म्लानता का अनुभव करने लगता है। परन्तु फिर भी उसको सुगन्ध की खान नही मिल पाती। उस मृग को इस बात का भान नही है कि कस्तूरी की वह सुगन्ध पहाड़ो की झाडियो या चट्टानो मे नही है, अपितु अपने मे ही है। इस ज्ञान के अभाव मे अपने मे ही रहने वाली कस्तूरी को वह प्राप्त नही कर पाता और उसकी तलाश मे ही उसका जीवन समाप्त हो जाता है। क्या यही अवस्था आज के मानव की भी नही हो रही है ?

□□

२१. आत्मा का धर्मस्थान

आत्म-स्वरूप को पहिचानने के लिये धर्मस्थान की पावन भूमि मे प्रवेश कीजिए। धर्म स्थान की पावन भूमि मे ऐसी दीवारें, कपाट आदि नही है। वह पावन भूमि तो हृदय है, जिस पर कर्मों के आवरण रूप किवाड़ लगे हुए है। यदि उन्हें खोलकर आप धर्मस्थान मे प्रवेश करेंगे, आत्मा के उस प्रकाश पु ज को देखने का प्रयास करेंगे कि इस देह लोक मे उस प्रकाश की नितात आवश्यकता है। जव वह प्रकाश प्राप्त होने लगेगा तव आप सोचेंगे अरे, हमने सारी जिन्दगी यो ही खो दी और यही हमारे दु ख का कारण रहा। यदि हम पहिले से ही यानी वाल्यावस्था से ही भीतर की ओर मुड़ जाते तो इस तथ्य को समझने मे पूर्ण सफल हो सकते थे।

इस जीवन का यदि कोई सार तत्त्व है तो वह है आत्मा का शुद्ध स्वरूप, जिसकी उपलब्धि के लिये प्रारम्भ से ही हम इस वर्ण-माला की ओर वढते तो युवावस्था की ओर वढते-वढते विपयो और इन्द्रियो के लुभावने दृश्यो मे न पडकर युवावस्था मे इस दिव्य स्वरूप को प्राप्त कर लेते परन्तु ऐसा नही हो पाया। खैर, अव भी समय है लेकिन यह परिस्थिति तभी वन सकेगी, जवकि आप धर्म द्वार को अन्दर से खोलेंगे।

□□

२२. समता–दर्पण

आत्मा ज्ञाता दृष्टा है और वह अपनी आतरिक शक्तियो को देख सकती है परन्तु अधिकाश मानव आतरिक शक्तियो को न देख-कर केवल बाहर की आकृतियो को देखकर ही फूले नही समा रहे हैं। जैसे कि—मैं कितना सुन्दर हूँ, मैं कितना गौरवर्ण हूँ, यह कुकुम का तिलक ठीक है या नही, इसकी परीक्षा लोग दर्पण मे देखकर करते हैं।

ऐसा वे क्यो करते हैं ?

दर्पण मे वस्तु का प्रतिबिंब पडता है, इसी कारण उसमे देखने वाला व्यक्ति जैसा है, वैसा ही दिखाई देता है।

जैसे आप दर्पण से मुखाकृति देख सकते हैं, उसी प्रकार समता के दर्पण मे अपने आपको देखले तो अन्दर के जीवन की समता को देख सकेंगे। जब तक मनुष्य समता के धरातल पर नही आता है, तब तक मस्तिष्क की गुत्थियो को वह नही समझ सकता। अनेक व्यक्ति अनेक तरह की कल्पनाओ की कुछ ऐसी पोटलियाँ लेकर चल रहे हैं, जिससे वे बोझिल बन रहे है और सभल नही पा रहे हैं। उनके लिए समता दर्पण की नितात आवश्यकता है।

□□

२३. विभिन्नता में एकता

इस विश्व मे प्राणियो का जो रूप दिखलाई दे रहा है, वह सब आत्मिक शक्ति का दृश्य है। आप रग-विरगी पगडियाँ या टोपियाँ लगाये हुये अथवा नगे सिर वैठे हैं। आपकी पगड़ियाँ भिन्न-भिन्न हैं, टोपियाँ अलग-अलग हैं और वस्त्र तथा वेपभूषा मे भी अतर है परन्तु सामान्य दृष्टि से मानव-मानव मे अतर नही है। मनुष्य के रूप मे सब एक हैं लेकिन विशेष दृष्टि से यदि पुनः चिन्तन किया जाए तो मानव-मानव मे भी भिन्नता दृष्टिगत होती है। सभी मनुष्य एक ही साचे मे ढली हुई वस्तु की तरह एक सरीखे नही हैं। सामान्य रूप से उनमे एक समान आकृति दिखलाई देती है। कान, आँखें, नाक, मुँह, हाथ, पैर और शरीर इनकी दृष्टि से तो समानता है, परन्तु यदि आप विशेष रूप से मानवो का आकार देखेंगे तो उनमे एकरूपता नही किन्तु विचित्रता मिलेगी। जव किमी मशीन से वस्तुएँ तैयार की जाती हैं, तो उससे जितनी वस्तुएँ वनती हैं वे सव एक ही आकार की होती है। परन्तु मानव का ढाचा एक सरीखा नही है। सहज ही मनुष्य यह सोच सकता है कि इस विभिन्नता के पीछे कारण है—माता-पिता की विविधता है, इसीलिए मनुष्यो की आकृतियो मे भी भिन्नता है। परन्तु यह हेतु भी ठीक नही वैटता है। माता-पिता भिन्न न हो, तव भी एक ही माता-पिता की मव सतानें एक-सरीखी नही होती हैं। एक ही माता की कुक्षि से पैदा होने वाली सतानो मे भी आप भिन्नता देखेंगे—शारीरिक दृष्टि से, वौद्धिक दृष्टि से और मानसिक दृष्टि से ये सव विचित्रताएँ होने पर भी आप उनमे एक समान तत्त्व अवश्य पायेंगे और वह तत्त्व है चैतन्य स्वरूप आत्मा यह तत्त्व ही स्थायी तत्त्व है। इसी की सुपुप्त शक्ति को जागृत करने का प्रयत्न करना चाहिये।

□□

२४. एकता में विभिन्नता क्यों ?

सब मे रहने वाली आत्माएँ योग्यता की दृष्टि से समान है परन्तु उन आत्माओ ने क्वचित् अर्थ को ही ग्रहण किया, अत विचित्रता पैदा हुई। यदि ससार की सभी आत्माएँ सासारिक पदार्थों मे न उलझ कर अध्यात्म जीवन के पूर्ण लक्ष्य को ग्रहण करें और ऐसा चिन्तन करे कि जितनी भी आत्माएँ हैं, वे सब मेरी जैसी आत्माएँ हैं, मेरे तुल्य हैं, तभी कल्याण हो सकता है। दूसरे शब्दो मे कहा जाये तो योग्यता की दृष्टि से वे परमात्मा के तुल्य हैं और जब ऐसी स्थिति है तो इन आत्माओ के साथ मैं द्वन्द्व क्यो करूँ ? धोखेबाजी क्यो करूँ ? यदि मैं आध्यात्मिक जीवन की दृष्टि से चिन्तन नही करता हूँ तो मैं परमात्मा के साथ धोखा करता हूँ। मैं मनुष्य को नही ठगता हूँ परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से परमात्मा को ठगता हूँ। मैं अपने पडौसियो को धोखा देकर प्रसन्न होता हूँ तो आध्यात्मिक दृष्टि का चिन्तन मुझे बताता है कि तू आध्यात्मिक नही है, भौतिक है। तू पडौसियो को अपने तुल्य नही समझ रहा है। यदि समाज की विषमता को देखकर कोई खुश होता है तो समझना चाहिये कि वह भौतिक है आध्यात्मिक नही है, अज्ञानी है। समाज मेरे भाइयो का समूह है। मैं अपनी हवेली मे बैठकर गुलछर्रे उडाता हूँ और यह सोचता हूँ कि मेरे पास तो बगला है, तीन मजिली हवेली है, मैं तो सब तरह से सुखी रह सकता हूँ, मेरे पास मे रहने वाले गरीबो की झोपडियाँ भले ही जले, नष्ट हो मेरा क्या बिगडता है ? यदि इस प्रकार का चिन्तन है तो यह बहुत बडे अज्ञान का चिन्तन है। वह नही सोच पाता है कि यह हवेली बनाई किसने है ? इसको बनाने वाले कौन हैं ? क्या स्वय मेहनत करके बनाई है यह हवेली ? इसके निर्माण मे उसने अपने शरीर का श्रम लगाया है या श्रम करने वाले दूसरे हैं ? जिन्होने श्रम करके हवेली को बनाया है वे व्यक्ति झोपडियो मे रह रहे हैं। उनको कितना क्या कष्ट हो रहा है, आवश्यक सामग्री भी उनको मिल रही है या नही। उनकी दशा कैसी है ? यदि वे इसमे सहयोग नही देते तो तीसरी मजिल पर नही बैठा जा सकता था। तीसरी मजिल पर बैठाने का श्रेय किसको है ? उन श्रम करने वाले व्यक्तियो को ही है। याद रखना चाहिये कि पड़ौसियो और श्रम करने वालो के साथ आत्मीयता का व्यवहार नही रखा तो आप भी क्या सुरक्षित रह सकेंगे ? अत सभी के साथ यथायोग्य समान व्यवहार करना चाहिये।

२५. दयनीय दशा हिन्दुस्तान की

आज हिन्दुस्तान की दशा बड़ी विचित्र है। जिस देश का अधिकाश भाग गांवों मे रह रहा है, उन ग्रामीण व्यक्तियो की दशा क्या है ? वे क्या सोच रहे हैं ? वे जैसे-तैसे अपने पेट पर पट्टी बाध-कर जीवन बिता रहे हैं। उनके जीवन की दशा दयनीय हो रही है, परन्तु यह सब देखने सोचने की फुर्सत किसको है ? कहावत है—'मरे जो दूजा, हम करायें पूजा।' दूसरे लोगो की कैसी भी दशा हो, हमको इसकी कोई परवाह नही, हमारा उनके साथ कोई सम्बन्ध नही। परन्तु हमारा ऐसा सोचना ज्ञान के साथ है या अज्ञान के साथ ? क्या इन भाइयो के साथ हमारा कोई सम्बन्ध नही है। वे भाई जिस रोज सम्बन्ध नही रखेंगे, उस दिन ज्ञात होगा कि हमारी क्या दशा बन रही है। हमे जिन्दा रहने का अवसर तभी मिलेगा, जब उन व्यक्तियो के साथ आत्मीय सम्बन्ध बनाये रखेंगे। भले ही आज वे आर्थिक दृष्टि से कमजोर हैं, परन्तु सब हमारे साथी हैं। इनके साथ हर व्यक्ति की आत्मीय भावना होनी चाहिये और चिन्तन करना चाहिये कि ये मेरे भाई हैं, मैं इनका भाई हूँ।

• •

२६. कपड़ों की मलीनता और आत्मा

कपडो के मैल को देखकर रोते रहे तो ऐसा करने से क्या होगा ? मैले कपडो को घोने के लिये समय तो चाहिये या नही ? वे कितने समय मे धुल सकते हैं। चौबीस घण्टे का मैला कपड़ा एक घण्टे मे धुल सकता है। एक घण्टे की खुराक लेते हैं तो उसका रस चौबीस घण्टे चलता है। आप चौबीस घण्टों मे एक घण्टे का समय निकालिये और चिन्तन कीजिये।

आप कह सकते हैं, "महाराज, यदि आज कपडा धोते हैं तो कल वह फिर मलीन हो जाता है।" परन्तु आप इससे क्यो घबराते हैं ? यदि आप धोते रहेंगे तो गाढा मैल नही लगेगा और धोना छोड़ देंगे तो ततु-तंतु मे मलीनता प्रवेश कर जायगी। आप दुकानदार है और रोजाना धुले कपडे पहिनते हैं परन्तु सन्ध्या तक वे मैले हो जाते हैं। दूसरे रोज फिर धुले कपडे पहिनते हैं और वे और मैले हो जाते हैं तो क्या आप उन्हे धोना छोड देते हैं ? आप यह सोचकर तो नही बैठते कि मैं इन्हे अभी धो रहा हूँ और फिर ये मैले हो जायेंगे तो इन्हें क्यो धोऊँ ? जब कपड़ो के लिये आप ऐसा नही सोचते है और उन्हे बार-बार धोते रहते हैं तो फिर अपनी आत्मा को धोने के लिये चिन्तन क्यो नही करते ?

यदि आप दृढ विश्वास के साथ आध्यात्मिक साधना मे लगते हैं तो अवश्य ही परम आनन्द की अनुभूति को पा सकते हैं। •

२७. प्रभु सेवा का अधिकारी कौन ?

प्रभु की सेवा तलवार की धार से भी कठिन बतलाई गई है। इसी कारण आन्तरिक ज्ञान के स्वरूप की उपलब्धि नही हो रही है। परन्तु जिस आत्मा को अपने असली स्वरूप का ज्ञान हो जाता है, उसको प्रभु की सेवा इतनी कठिन ज्ञात नही होती, जितनी कि अज्ञानी को होती है। अज्ञानी मनुष्य को सेवा का कार्य सही नही दिखलाई देता। यहां 'अज्ञान' का तात्पर्य कम ज्ञान से नही है। ज्ञान किसी को कम हो या अधिक, कोई अधिक या कम ज्ञान से अज्ञानी नही कहला सकता। परन्तु जिसका ज्ञान अविकसित है, जो वस्तु जैसी है उसे वैसी न समझकर उसमें जो विपरीत श्रद्धान करता है, उसको यहाँ अज्ञानी कहा गया है। ऐसा अज्ञानी प्रभु सेवा का अधिकारी नही हो सकता। •

२८. ज्ञानी–अज्ञानी कौन ?

ससार के सभी पदार्थ नाशवान है। इन नाशवान पदार्थों को काम मे लिया जा सकता है, परन्तु ये ही आत्मा के लिये सर्वस्व नही बनते हैं। आत्मा के लिये तो चरम लक्ष्य प्रभु के तुल्य बनने की प्रबल जिज्ञासा और तदनुरूप श्रद्धान ही मुख्य है, ऐसे लक्ष्य पर आरूढ व्यक्ति चाहे थोडा ज्ञानी हो या अधिक, परन्तु वह प्रभु की सेवा के मार्ग को ग्रहण करने वाला बन सकता है। जिसको इससे विपरीत ज्ञान है, जो आत्मा और परमात्मा सम्बन्धी विषय को समझता ही नही है अथवा जो समझकर झुठलाता है, अपनी कमजोरियो को छिपाकर परलोक का अपलाप करता है, आत्मा की शक्ति को विस्मरण करके भौतिक तत्त्वो का प्रतिपादन करता है, ससार की मोह माया ही जिसके जीवन का लक्ष्य है, इस जीवन के अन्दर कुछ खा लिया, पी लिया, पहिन लिया, मौज-शौक कर लिया यही सब कुछ है, इसके अतिरिक्त कोई तत्त्व नही है, जो इस प्रकार की श्रद्धा न रखकर चलने वाला है तो चाहे वह व्यक्ति लोगो की दृष्टि मे अधिक ज्ञानी भी क्यो न हो, भौतिक विज्ञान की दृष्टि से प्रकाण्ड विद्वान् भी क्यो न हो, परन्तु शास्त्रकार कहते हैं कि जो इस प्रकार एकाकी ज्ञान के साथ है और अपने निज स्वरूप को भूल कर ससार के विज्ञान को ही सब कुछ मानता है वह अज्ञानी है।

□□

२९. श्रद्धाभ्रष्ट क्रिया

जीवन की क्रियाओ का प्रयोग यदि वास्तविक शुद्ध आत्मिक लक्ष्य की ओर है तो उनका फल अनेकान्त नही होता—एकान्त होता है। अर्थात् वह अवश्यमेव आत्मा की सिद्धि को दिलाने वाला और प्रभु की सेवा के चरम सिरे पर पहुँचाने वाला होता है। परन्तु जिसका लक्ष्य विपरीत है, श्रद्धान सही नही है, वह व्यक्ति कितनी भी कुछ क्रियाएँ करे, चाहे वह ससार के अन्दर परोपकार के नाम से क्रिया करे, चाहे किसी अन्य सेवा की दृष्टि से काम करे अथवा धार्मिक क्षेत्र की पोशाक लेकर के कठिन से कठिन तप भी करे परन्तु वह तप भी सम्यक् दृष्टि आत्मा के तप के सोलहवें हिस्से को भी नही छता है। कहा भी है कि—

मासे मासे उ जो बोलो, कुसग्गेरण तु भु जइ,
न सो सुयवखाय धम्मस्स, कलं अग्धई सोलसि ।

कोई मास-मास खमण की तपस्या करे, एक महीने भर का तप करे यानी सिर्फ गर्म पानी के आधार पर तीस दिन तक रहे और इकतीसवें दिन भोजन की दृष्टि से स्वल्प भोजन करे। इतना स्वल्प भोजन कि एक डाभ के तृण के ऊपर जितना अन्न आए, उतना अन्न वह ग्रहण करे और पुन तीस दिन की गर्म पानी के आधार पर तपस्या करले और फिर तीस दिन समाप्त होने पर उतना ही अन्न पुनः ग्रहण करके तपस्या करे, ऐसे महीने-महीने भर की तपस्या करने वाला व्यक्ति दुनिया की दृष्टि मे महान् तपस्वी कहला सकता है, लोग उससे प्रभावित हो सकते हैं। परन्तु प्रभावित वे ही होते है, जिन्हे सही मार्ग का ज्ञान नही है। ऐसा बालतपस्वी स्वय भी ससार मे भटकता है और अपने भक्तो को भी भटकाता है।

□□

३०. प्रश्नकर्ता, प्रश्नकर्ता को पहचाने

इस दृश्य जगत् मे अनेक प्राणी अपनी विविध क्रियाओ द्वारा कार्य कर रहे है, परन्तु उन्हे प्रभु के दर्शन नही हो रहे है। इस आत्मा ने अनादि काल से संसार के पदार्थों का अनुभव किया है और करती ही चली जा रही है। परन्तु इन नाशवान पदार्थों के बीच उन अविनाशी तत्त्वो का अश भी दृष्टिगत नही हो रहा है। परमात्मा का स्वरूप कहाँ है ? कितनी दूर है ? उनको कैसे पाया जाए ? इन सब प्रश्नो का हल एक ही स्थल पर हो सकता है। दूर जाने की आवश्यकता नही, किसी और स्थान का अवलोकन करने की भी आवश्यकता नही है। किन्तु जहाँ यह प्रश्न उठ रहा है वही स्वय प्रश्नकर्ता को देख लेता है तो उसकी जिज्ञासा शान्त हो जाती है। परन्तु प्रश्नकर्ता स्वय के स्वरूप को नही देख पा रहा है। जहाँ से प्रश्न का आविर्भाव हो रहा है, उस भूमिका के यदि दर्शन कर लिए जाए तो परमात्मा कहाँ है ? आत्मा कहाँ है ? इन दोनो प्रश्नो का हल एक ही साथ हो जायेगा।

□□

३१. कर्मों का आत्मा से सम्बन्ध

आत्मा के सर्वात्म प्रदेशो से कर्म वर्गणाए सबद्ध होती है, चाहे शुभ कर्मों का बन्धन हो या अशुभ कर्मों का, बन्धन सर्वोत्तम प्रदेशो से होगा । जिस प्रकार उबलते तेल के मध्य मे बड़ा डाल दिया जाता है तो वह अपने सभी छिद्रो से तेल को ग्रहण करता रहता है । उसी प्रकार आत्मा भी सर्वत्र सबधित कर्म वर्गणाओ को एक साथ सर्वात्म प्रदेशो से ग्रहण करती रहती है ।

जीव के साथ सबद्ध होकर वे जड़ कर्म वर्गणाए भी सजीव कहलाने लगती हैं ।

इन कर्मों का विभागीकरण मुख्यत: चार प्रकार से होता है—प्रकृति बध, स्थिति बध, अनुभाग बध और प्रदेश बध ।

कर्मों के अपने-अपने स्वभाव को प्रकृति बध, उनकी नियत समय तक फल देने की शक्ति को स्थिति बध, उस फल मे आने वाली रस की तीव्रता-मदता को अनुभाग बध तथा कर्म दलिको को प्रदेश बध कहते हैं ।

स्वभाव: प्रकृति प्रोक्त स्थिति कलाव धारणम् ।
अनुभागो रसो ज्ञेयो: प्रदेशो दल सचय: ।।

जैन दर्शन मे कर्म सिद्धान्त की व्याख्या बहुत गहन, गम्भीर एव साइटिफिक तरीके से प्रतिपादित है । ऐसी व्याख्या अन्य दर्शनो मे नही मिलती । अन्य दर्शनो मे प्रारब्ध, माया, प्रकृति, वासना आदि शब्दान्तर से कुछ व्याख्या मिलती है, किन्तु वह कर्म की मौलिक विवेचना नही रख पाती ।

इन कर्मों के कारण आत्मा चार-गति, चौरासी लाख जीव योनियो मे परिभ्रमण कर रही है । जब तक इनका समूलत उच्छेदन नही होगा तब तक आत्मा शाश्वत सुख की अवस्था प्राप्त नही कर सकती । □

३२. मूल कारण की खोज

कर्म विदारण किन उपायो से किये जाते हैं ? किन कारणो से कर्म वन्धन तथा कर्मोदय की स्थिति वनती है ? इन सवका परिज्ञान करते हुए कर्म-वन्धन के मूल कारणो पर प्रहार करना चाहिये । जव तक कर्म-वन्धन के मूलभूत कारणों पर प्रहार नही किया जायेगा तव तक कर्मों का समूलतः नाश नही हो सकता । वनस्पतियो मे आपने 'रजका' का नाम सुना होगा । रजका को वोने के वाद जव वह वडा होता है, तव कृपक इसे ऊपर-ऊपर से काट लेते हैं । कटने के वाद भी वह कुछ ही दिनो के वाद पानी आदि के मिलने पर पुन लह-लहाने लगता है, क्योकि उसकी जड नही काटी गई है । जव तक जड का उच्छेदन नही होगा, तव तक ऊपर से कितना ही काट लिया जाय, फसल उतनी ही खडी हो जायगी । यह स्थिति हर क्षेत्र मे होती है । रोग को दूर करने के लिये भी जव तक रोगोत्पत्ति के मूलभूत कारणो को नही हटाया जाएगा, तव तक रोग समूलत नष्ट नही हो सकता । कर्म का विदारण भी समूलत जव तक नही होगा, तव तक कर्म वन्धन की प्रक्रिया भी चलती रहेगी । अपुनर्भाव से कर्मोच्छेदन के लिये त्रियोग समन्वित संयम तथा समीक्षण दृष्टि की अनिवार्य आवश्यकता है ।

इस प्रकार का सयमीय जीवन अनगारी अवस्था मे ही अपनाया जा सकता है । अनगार से तात्पर्य जिसके कोई घर न हो । कल वहा तो आज यहा । आज यहां तो कल कही और स्थान पर चले जायेंगे । इस प्रकार की वृत्ति वाले साधक को अनगार कहा गया है । इस प्रकार से विचरण करने वाला अनगारी साधक, कर्मोत्पत्ति के मूलभूत कारणो पर प्रहार करता हुआ उन्हे आत्मा से समूलतः उखाड़ फेंकता है । जब रजके को मूल सहित काट देते हैं, तव वह पुन नही उगता । उसी प्रकार साधक जव कर्मों का समूलत छेदन कर देते हैं, तव आत्मा के साथ उन कर्मो का पुन कभी भी वन्धन नही होता । वे कर्म आत्मा से सदा-सर्वदा के लिये अपुनर्भाव से विलग हो जाते है ।

□□

३३. संकल्पशक्ति : दृढ़ता

अतिमुक्त अरणगार ने यह दृढ निश्चय किया था कि मुझे निश्चित रूप से कर्मों का आत्मा से विलगीकरण करना है। इसी दृढ सकल्प के साथ वे साधना के पथ पर समीक्षण दृष्टि के साथ बढ़ते चले गये। रत्नत्रय रूप आराधना विशुद्ध, विशुद्धतर, विशुद्धतम बनती चली गई। यही विशुद्धतम अवस्था इतनी तीक्ष्ण बनी कि वह कर्म की सुदीर्घ परम्परा को नष्ट करने मे समर्थ हो गई। उन्होने लोकालोक प्रकाशक केवल ज्ञान, केवल दर्शन को प्राप्त किया। शीतलता ही नही परम शीतलता प्राप्त करली। वे शात, प्रशात अवस्था मे अवलीन हो गए। आत्मा की चरम परिणति, शीतलता अर्थात् परिपूर्ण शात-प्रशात अवस्था प्राप्त करना है। अत: आवश्यकता है, दृढ-सकल्प शक्ति की।

□ □ □

३४. उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य

"उत्पाद् व्यय ध्रौव्य युक्त सत्।"
—तत्वार्थ सूत्र ५/२९

ससार के समस्त सत् पदार्थ उत्पत्ति, विनाश शक्ति होने के साथ ही ध्रुवत्व स्वभाव वाले हैं। जड एव चैतन्य पर्यायो की अपेक्षा उत्पन्न नष्ट होते रहते हैं। किन्तु जडत्व चैतन्यत्व की अपेक्षा ध्रुव हैं। उनका मौलिक स्वरूप कभी नष्ट नही होता।

पुद्गलो मे दृश्यमान मनोज्ञता, कमनीयता, रमणीयता, आकर्षणता, पुद्गलो के परिवर्तन से अमनोज्ञ, अकमनीय, अरमणीय, अनाकर्षण मे परिवर्तित हो जाती है।

बचपन का सुन्दर रूप यौवनत्व और वृद्धत्व मे जरा-जीर्ण होता हुआ नष्ट हो जाता है। परिवर्तन के इस ध्रुव सिद्धान्त को परिवर्तित करने का सामर्थ्य ससार के किसी भी व्यक्ति मे नही है।

साधक को स्वात्म बोध के साथ समीक्षण पूर्वक पुद्गलो के परिवर्तन को समझते हुए अमरत्व रूप, अनन्त सुख को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

३५. कर्मों का कर्जा

समय का परिपाक होने पर निश्चित रूप से कर्म का उदय आत्मा पर होता है । प्रदेशोदय से हो चाहे विपाकोदय से, कर्म को भोगे विना ग्रात्मा की कर्म से मुक्ति नही हो सकती "कडाण कम्माण न मोक्ख ग्रत्थि" कृतकर्म से भोग के विना मुक्ति नही हो सकती । कर्म का आत्मा से ग्रनादि सम्वन्ध होते हुए भी ग्रात्मा सत् पुरुपार्थ के वल से उसे विलग कर सकती है । जिस प्रकार कि मुर्गी एवं अण्डे, स्वर्ण और मिट्टी के ग्रनादि सम्वन्ध को प्रयोग विशेप द्वारा व्यवच्छिन्न किया जा सकता है । आत्मा के लिये कर्म भी एक कर्ज है । जिस प्रकार कर्जदारो मे वह व्यक्ति श्रेष्ठ होता है जो अपने पास धन-सम्पत्ति के सुलभ होने पर निश्चित सीमा से पहले ही कर्ज चुका दे, जिससे वह शीघ्र ही उस कर्ज से हल्का हो जाय । ठीक इसी प्रकार ग्रात्मा पर जो कर्ज है, उसे सुज्ञ ग्रात्मा शीघ्र ही चुकाने का प्रयत्न करे । मानव तन, स्वस्थता, जिन-धर्म का सुयोग ग्रादि दुर्लभ वस्तुएँ प्राप्त हैं । ऐसे सुयोग मे पूर्ववद्ध कर्मों को निर्जरित करने के लिये प्रयाम करना चाहिये । आत्म-शक्ति की तीक्ष्णता होने पर ही कर्म का कर्ज चुकाया जा सकता है । उन कर्मों के कर्ज को चुकाने के लिये सत्पुरुपार्थशील वनना चाहिये । आज का पुरुपार्थ निश्चित ही पूर्व गृहीत कर्म-कर्ज को चुकाने मे समर्थ होगा, साथ हा रत्नत्रय की शुभाराधना रूप तीक्ष्णता से आने वाला कर्म-वन्धन का कर्ज भी रुक जाएगा । आत्मा कर्मों से हल्की होती चली जाएगी । ग्रन्ततः वह भी ग्रपुनर्भाव से कर्म-कर्ज से विमुक्त हो जाएगी ।

□□

३६. अभयदान

"दाणाण सेट्ठ अभयप्पयाण"

—सूत्रकृताङ्ग, सूत्र १/६/२३

सभी दानो मे अभयदान सर्वश्रेष्ठ दान है। आहार दान, ज्ञान दान, औषध दान भी अपने-अपने स्थान पर उपयोगी हैं, किन्तु इन सभी दानो का आधारभूत अभय दान है। मृत्यु के भय से आतकित व्यक्ति को कितना ही आहार दान, औषध दान, ज्ञान दान दिया जाय, तथापि उसे शाति नही मिल सकती। अतः मृत्यु के भय से आतकित व्यक्ति को निर्भय बनाने वाला अभयदान ही सर्वश्रेष्ठ दान है।

जब जीव ससार की समस्त आत्माओ के साथ अपना आत्मीय व्यवहार रखता है, प्रत्येक प्राणी के प्रति करुणावत बना रहता है, तब उसकी यह आत्मीय भावना स्वय के परमात्मा स्वरूप को उजागर करने मे सहायक होती है।

"अभयदान" अभयदान—ग्राहक को तो अभयी बनाता ही है, किन्तु प्रदाता के कर्म-निर्जरा एवं पुण्यार्जन मे हेतु बनता है।

अभयदान तभी दिया जायेगा जब दृष्टि समीक्षण बनेगी।

□□

३७. करुणा

"सव्वेसिं जीवियं पियं"

ससार के समस्त प्राणियो को जीवन प्रिय है। मरना कोई नही चाहता, सभी जीना चाहते हैं। समस्त चराचर प्राणियो की रक्षा करना करुणा है। करुणावत साधक अखिल प्राणियों के दु खो को दूर करने की नि:स्वार्थ भावना वाले होते हैं। यह भावना स्वय के कर्म रूपी मल को दूर करने वाली वनती है।

जिस प्रकार प्रकाशमान हीरा रजकण द्वारा मलिन हो जाता है, चमकता गोल्ड (सोना) मिट्टी के कारण मलीमप वन जाता है, इसी प्रकार अनन्त-अनन्त गुणो से सम्पन्न आत्मा भी कर्मो के मल से मलीमष वन जाती है। इसका स्वाभाविक रूप विकृत वन जाता है। इस विकृत रूप को हटाने मे समस्त प्राणियो के प्रति रखी जाने वाली करुणा अत्यधिक सहायक वनती है। नि.स्वार्थ करुणाभाव की चरम परिणति ही परमात्म भाव को उजागर करती है।

□□

३८. छद्मस्थों के लिये आदर्श : वीतरागी

वीतरागी महापुरुषो की गुण स्तवना स्वात्मीय जीवन को आलोकित करने मे सहायक होती है। सिद्धान्त की दृष्टि से जिस प्रकार धर्मास्तिकाय तत्त्व गति-क्रिया मे सहायक होता है। गति सहायक तत्त्व की खोज मे अब तक का वैज्ञानिक अनुसधान "ईथर" के नाम से सामने आया। यह तत्त्व सम्पूर्ण लोक मे व्याप्त है। जब भी कोई प्राणी गति-क्रिया करता है तो वह गति-क्रिया होती तो उसके स्वय के पुरुषार्थ से है, किन्तु उस गति-क्रिया मे धर्मास्तिकाय द्रव्य सहायक होता है।

इसी प्रकार भव्य आत्माओ के विकास मे आदर्श रूप मे सिद्ध भगवत आदि लोकोत्तर महापुरुष सहायक बन जाते हैं। अरिहत आदि महापुरुष तो उपदेशादि के माध्यम से भी भव्यात्माओ को प्रतिबोधित करने मे सहायक बनते हैं, किन्तु सिद्ध भगवत तो मात्र आदर्श के रूप मे भव्य आत्माओ के लिये स्वय के आत्मीय गुणो को व्यक्त करने मे सहायक रूप बनते हैं। इसी बात को और अधिक स्पष्ट करने के लिये एक व्यावहारिक रूपक भी लिया जा सकता है।

जिस प्रकार कोई व्यक्ति आइने मे अपना मुँह देखता है, और जब उसे अपने चेहरे पर काला धब्बा दिखलाई देता है तो उस धब्बे को वह अपने ही पुरुषार्थ द्वारा हटाकर चेहरे को स्वच्छ बना लेता है। आइना उसमे मात्र सहायक होता है। मूलत. तो धब्बे को हटाने का प्रयास स्वय को ही करना पड़ता है। इसी प्रकार आइने की तरह आदर्श रूप मे सिद्ध एव अरिहत भगवान् अपनी आत्मा पर लगे हुए कर्म रूप काले धब्बे को हटाने मे सहायक बनते हैं।

भव्य आत्माएँ उनके आदर्श रूप जीवन के साथ जब अपनी आत्मा का तुलनात्मक अध्ययन करती हैं तो उन्हे कर्म का काला धब्बा स्पष्ट नजर आ जाता है—जो कर्म आत्म गुणो को मलीमप बनाते हैं और जीव ऊर्ध्वारोहण मे अवरोधक बनते हैं। साधना की उच्चतम श्रेणियो पर पहुँचने के लिये ऐसे कर्ममल का आत्मा से प्रक्षालित होना आवश्यक है।

३६. उत्पत्ति-विनाश के बीच ध्रौव्यता

उत्पन्न विनाश के साथ ध्रुवत्व के रूप मे पदार्थ किस प्रकार विद्यमान रहता है। इसका विज्ञान एक स्थूल रूपक के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

एक राजा के एक राजकुमार एव एक राजकुमारी थी। राजकुमार स्वर्ण कुण्डल को तुडवाकर स्वर्ण मुकुट वनाना चाहता था, लेकिन राजकुमारी स्वर्ण कुण्डल को उसी रूप मे रखना चाहती थी। इन दोनो के विचारो से निरपेक्ष सम्राट मध्यस्थ थे। क्योकि वे सोच रहे थे कि स्वर्ण कुण्डल से स्वर्ण मुकुट वनाया जाय या उसे स्वर्ण कुण्डल के रूप मे रखा जाय दोनों मे स्वर्ण तो विद्यमान रहेगा ही। उसमे कोई क्षति होने वालो नही है। ठीक इसी प्रकार संसार की समस्त वस्तुएँ परिवर्तनशील हैं, हर क्षण प्राचीन पुद्गल परिवर्तित हो जाते है और नवीन पुद्गल सम्वन्धित होते जाते हैं। इतना होते हुए वस्तु के मौलिक स्वरूप मे कोई अन्तर नही आता। जिस प्रकार एक काष्ठ पट्ट है। उस पर से हर क्षण पुद्गल परमाणु निकलते जाते हैं और दूसरे परमाणु पट्ट से सयोजित हो जाते हैं। यह क्रम निरन्तर चलता रहता है किन्तु इस क्रम की विज्ञप्ति तव होती है, जव काष्ठ-पट्ट जर्जरित हो जाता है।

इसी प्रकार देह पिण्ड मे भी उत्पाद-व्यय चलता रहता है। पुराने परमाणुओ का विसर्जन एव नये परमाणुओ का सर्जन होता रहता है। वृद्धावस्था तत्क्षण नही आती, किन्तु निरन्तर पौद्गलिक परमाणुओ के परिवर्तन से आती है। यह परिवर्तन शीघ्रता से वोधगम्य नही होने से मानव वस्तु तत्त्व का यथार्थ वोध नही कर पाता।

□□

४०. पौद्‌गलिक परिवर्तन

पुद्‌गलो का परिवतन सशक्त से सशक्त पदार्थ को भी जीर्ण-शीर्ण कर डालता है। आपने वज्र रत्न का नाम सुना होगा। वह इतना सशक्त होता है कि उसके ऊपर कितना ही मन लोहा डाल दिया जाय, किन्तु उसका एक नोक तक नही टूटता। ऐसे वज्र रत्न मे भी हर क्षण परिवर्तन होता रहता है। प्राचीन पुद्‌गल परमाणु हटते जाते है, नये परमाणु सयोजित होते जाते हैं। यह क्रम चलता रहता है। समय के परिपाक से वह वज्र रत्न भी इतना जीर्ण हो जाता है कि एक पाच वर्ष का वालक भी उसे हाथ मे लेकर मिट्टी के ढेले की तरह मसल सकता है।

कोई भी वस्तु सदा-सर्वदा के लिए उत्पाद-व्यय से रहित मात्र ध्रौव्यत्व रूप मे रहने वाली नही है। जड़ पदार्थ मे उत्पाद-व्यय होते हुए भी वे जडत्व की अपेक्षा ध्रुव होते हैं। कितना भी परिवर्तन हो जाय किन्तु जड़ कभी चैतन्य नही होता। इसी प्रकार चैतन्य भी उत्पाद-व्यय स्वभाव वाला होते हुए भी चैतन्यत्व की अपेक्षा ध्रुव है। जडत्व की अपेक्षा चैतन्यत्व मे अनिर्वचनीय अवस्थायें पाई जाती हैं। जड को सद् द्रव्य के रूप मे कहा जा सकता है पर चैतन्यत्व मे सत् के साथ-साथ ज्ञान एवं वास्तविक आनन्द की अवस्थायें भी रही हुई हैं। सक्षेप मे जड और चैतन्य मे यह मौलिक अन्तर है।

पुद्‌गलो के परिवर्तन से मृदु शब्द भी कठोर और कठोर शब्द भी मृदु हो जाता है। पुद्‌गलो के परिवर्तन से ही रूपवान कुरूप और कुरूप रूपवान वन जाता है। पुद्‌गलो के परिवर्तन से ही खट्टा रस मीठा व मीठा खट्टा वन जाता है। पुद्‌गलो का परिवर्तन ही सुगन्ध को दुर्गन्ध के रूप मे और दुर्गन्ध को सुगन्ध के रूप मे वदल सकता है। पुद्‌गलो का परिवर्तन ही खरदरे स्पर्श को सुहावना और सुहावने स्पर्श को खरदरा वना सकता है। पौद्‌गलिक परिवर्तन ही ससार की विविध विचित्रता का मूल हेतु है। पुद्‌गलो पर आसक्त होकर आनन्द मनाने वाला व्यक्ति कभी भी शाश्वत सुख की अनुभूति नही कर सकता।

□□

४१. पुद्गलानन्द शाश्वत नहीं

पुद्गलानन्दी कोई भी आत्मा शाश्वत सुख की उपलब्धि नही कर सकती। क्योकि पुद्गलो मे वह शाश्वत तत्त्व नही, जिससे वह आत्मा को शाश्वत सुखदायी बना सके। यथार्थ मे तो पुद्गल सुख रूप है ही नही। जो मिष्ठान्न सुख देने वाला माना जाता है, उसी का अधिकाधिक आहार करने पर वही दु.खदायी वन जाता है। यही स्थिति अन्य पौद्गलिक वस्तुओ की भी है। सुख रूप दिखने वाले पुद्गल वास्तव मे सुख रूप न होकर सुखाभास के रूप मे हैं। अतः भव्य आत्मा पुद्गलानन्दी न वन कर आत्मानन्दी वनने का प्रयत्न करे। आत्मानन्द वह आनन्द है, जो सदा सर्वदा के लिए परम आनन्द प्रदान करने वाला है, जिस आनन्द की अभिव्यक्ति होने पर आत्मा कभी भी दु ख रूप स्थिति मे नही आ सकती। आत्मानन्द को पाने के लिये आवश्यकता है आत्माभिमुख वनने की, समीक्षण प्रज्ञा को उजागर करने की।

□□

४२. आत्माभिमुख बनो

जो साधक पुद्गलासक्ति से निरपेक्ष हो समीक्षण की साधना मे तन्मय वन जाता है, वह आत्मोत्कर्ष की दिशा मे प्रगतिशील वन जाता है। जव कृष्ण महाराज अपने दलवल के साथ किसी मार्ग को पार कर रहे थे उस समय रास्ते मे एक मरी हुई कुतिया पडी हुई थी, जिसकी भयानक दुर्गन्ध दूर-दूर तक फैल रही थी। कृष्ण महाराज के आगे चलने वाले सभी अनुचर, अश्वारोही आदि उस दुर्गन्ध पर से घृणा करते हुए नाक पर पट्टी वाधकर आगे वढ रहे थे। किन्तु उसी कुतिया के निकट से निकलते हुए श्री कृष्ण को न तो दुर्गन्ध से घृणा हुई और न ही श्रीकृष्ण ने नाक पर पट्टी ही वाधी। उनकी दृष्टि तो कुतिया की दत पंक्ति पर ही जम गई, जिसे देखकर वे वोले—अहो, इस कुतिया की दत पक्ति कितनी क्रमवद्ध और स्वच्छ है। यह है सम्यक् दृष्टि आत्मा का विचार। स्वात्माभिमुख साधक यह जान लेता है कि यह मनोज्ञता या अमनोज्ञता पुद्गल के परिणाम से है। इस पर रागद्वेप कर कर्म वन्धन नही करना चाहिये।

४३. क्रिया की प्रवृत्ति शुभ में या अशुभ में ?

मन, वचन और काय रूप योगो के द्वारा क्रिया की प्रवृत्ति शुभ कार्य मे भी हो सकती है तो अशुभ मे भी। हिंसात्मक कार्य मे भी हो सकती है तो अहिंसात्मक कार्य मे भी। जिस प्रकार सुई को सीने के काम मे लिया जा सकता है, तो उसे किसी को चुभाया भी जा सकता है। काटे से काटा निकाला भी जा सकता है तो काटे को शरीर में गडाया भी जा सकता है। इसी प्रकार त्रियोग से युक्त क्रिया के द्वारा आत्मा पर स्थित कर्मों के पर्तों को हटाया भी जा सकता है, तो उन्ही त्रियोग से सम्बन्धित क्रियाओ के अशुभाचरण से आत्मा को कर्मों से मलीमष भी वनाया जा सकता है। मन, वचन, काय रूप क्रियाओ की प्रवृत्ति को किस प्रकार गतिशील करना चाहिये, इसका विवेक व्यक्ति को होना आवश्यक है। जव तक वह इस विवेक से अनभिज्ञ रहेगा तब तक आत्मा का मौलिक स्वरूप प्राप्त नही कर सकता। उत्तराध्ययन सूत्र मे स्पष्ट कहा है—

जोग-सच्चेण जोग विसोहेइ

योग सत्य से जीव मन, वचन, काय की क्रिया को विशुद्ध करता है। यह विशुद्धि योग समीक्षण से सम्बन्धित है।

□□

४४. कर्ता के तीन रूप

कर्ता से क्या अर्थ लिया जाय ? क्या जिस क्रिया का जो कर्ता है, वह ही यथार्थ मे उस क्रिया का कर्ता है या करवाने वाला एवं उस क्रिया का अनुमोदन करने वाला उसका कर्ता है ?

जिस प्रकार इन्जन चलाने वाला व्यक्ति एक होता है किन्तु उसे चलाने मे गार्ड तथा कोयला डालने वाले आदि अनेक व्यक्ति सहायक होते हैं। उस गाड़ी में बैठने वाले व्यक्ति भी उसे चलाने मे सहायक होते हैं। यदि गाड़ी नही चलती है तो यात्रियों के मन में यह भावना आती है कि जल्दी से गाड़ी चले, जिससे गन्तव्य तक शीघ्र पहुँच जाएँ। यह गाडी चलाने मे अनुमोदन है। अतः गाड़ी को चलाने वाला भी कर्ता है, गाडी को चलवाने वाले भी उसके कर्ता हैं और उसके अनुमोदक भी उसके कर्ता हैं।

इसी प्रकार भोजन अथवा व्यापार मे होने वाली हिंसा को करने वाले उस पाप कर्म के कर्ता के रूप में है, उस हिंसा को कराने वाले भी, उसके करवाने वाले कर्ता के रूप मे हैं, और उस हिंसा का अनुमोदन करने वाले, अनुमोदन कर्ता के रूप मे है। अत. स्पष्ट है कि कर्ता के विविध रूप होते हैं, उन विविध रूपो के अनुसार पाप कर्मों के, जीव सहभागी होते है।

यद्यपि रसोई बनाने वाली स्त्री है किन्तु पुरुप आर्डर देता है—रसोई शीघ्र बनाओ, मुझे दुकान जाना है, इस आर्डर से पुरुप रसोई का करवाने वाला कर्ता है। यदि रसोई जल्दी बन गई तो वह बहुत खुश होता है, तब वही रसोई का अनुमोदक कर्ता बन जाता है। अतः रसोई के पाप का सम्बन्ध पुरुप के साथ भी जुड जाता है।

इसी प्रकार व्यापार के विषय में भी है। यद्यपि व्यापार पुरुप करता है, किन्तु बहिनें यह चाहती हैं कि मेरे पति देव दुकान पर बैठें और खूब धनोपार्जन करें। मेरे लिए अच्छे जेवर, सुन्दर बगला और आधुनिक डिजाइनदार साडिया खरीद कर दें, इस भावना से वह व्यापार को कराने वाली कर्ता बनती है। यदि पुरुप कमाकर उसकी आवश्यकता पूर्ति कर देता है तो वह व्यापार की अनुमोदक कर्ता बनती है। इस प्रकार व्यापारिक हिंसा मे पुरुप के साथ स्त्री भी सहभागी होती है।

अतः स्पष्ट है कि पाप करने वाला कोई भी हो किन्तु उससे सम्बन्धित सभी व्यक्ति उस पाप के सहभागी होते हैं। □□

४५. प्रेय मार्ग और दहेज

वर्तमान युग मे कितनी कुप्रथाएँ, कुरूढियाँ चल रही हैं। दहेज-प्रथा के भूत ने सारे समाज मे आतक फैला रखा है। दहेज की वेदी पर कई कुँवारी बहिनो ने अपना बलिदान दे दिया है, तो कई नव-विवाहित वहिनो को अपना होम करना पड़ा है। शिष्ट कहलाने वाला समाज भी दहेज प्रथा से अछूता नही है। बाहरी प्लेटफार्म पर दहेज का विरोध करने वाले बहुत मिलते हैं, सामाजिक मीटिंगो मे लम्बे-चौड़े भाषण देने वाले बहुतेरे है। किन्तु विरोध करने वाले भी कई व्यक्तियो के समक्ष जब स्वय के लड़के के सम्बन्ध का प्रसग आता है तो वे दहेज लेने में नही चूकते। ऊपरी तौर पर तो यह प्रदर्शन करते रहते हैं कि हम दहेज नही माँगते, देने वाला अपनी बेटी को देता है, लाख दे चाहे करोड, हमें उससे कोई मतलब नही है। हमे तो लडकी गुणवान चाहिए। ऐसे बोलने वाले व्यक्ति भी प्रकारान्तर से माँगने मे नही चूकते है। मेरे कानो मे ऐसे शब्द भी पडते हैं कि कई लडको के पिता ऐसा कहते हैं, 'साहब' पहले अमुक शहर के व्यक्ति आए थे, वे इतना देने को कह गए थे' इसका तात्पर्य इससे कम तो आप क्या देंगे ? इसी प्रकार के अन्य तरीको के द्वारा भी दहेज की माग की जाती है। यह कुप्रथा समाज के लिए एक भयकर अभिशाप बनी हुई है।

जिन धर्म के उपासक कहलाने वाले जैनी, जो कि छोटे से छोटे जन्तु को भी मारने मे हिचकते हैं, ऐसे अहिंसक व्यक्ति यदि दहेज प्रथा के रोग से ग्रस्त हैं तो वे सच्ची तरह से अहिंसा की उपासना नही कर सकते।

आप सभी श्रेय मार्ग के राही बनना चाहते हो तो प्रेय मार्ग को सबल बनाने वाली इस कुप्रथा को त्याग देना चाहिए। बिना सत्पुरुषार्थ के उपार्जित किया गया धन भी पच नही सकता। व्यक्ति को कभी भी परमुखापेक्षी नही होना चाहिए।

□□

४६. श्रोत इन्द्रियरामी का परिणाम

श्रोत इन्द्रिय कान में अच्छे और वुरे दोनो प्रकार के शब्द आते हैं। प्रशसात्मक शब्द मन को प्रफुल्लित करने वाले होते हैं। निदात्मक शब्द मन को अप्रसन्न करने वाले होते हैं। इन प्रशसा और निन्दा भरे शब्दों पर होने वाला राग और द्वेष का भाव कर्म वधन कराने वाला वन जाता है। कान के विषय मे आसक्त मृग अपने जीवन को खो वैठता है। विषधर सर्प जिसके डक मात्र से प्राणियो का वध हो जाता है, ऐसा सर्प भी कर्णेन्द्रिय के वशीभूत होकर अपनी शक्ति खो देता है। जव सपेरा पु गी वजाने लगता है, उस पु गी की मधुर झकार को सुनकर सर्प अपना भान भूल जाता है, और झूम उठता है, विल से निकल कर सपेरे के सामने कु डलि मारकर पुंगी के नाद मे तन्मय हो जाता है। उसकी आसक्ति इतनी अधिक वढ जाती है कि वह सपेरा उसे पकड़कर, उसके मुँह से जहर की ग्रन्थि निकाल देता है, तव भी उसे भान नही रहता है। यही हाल मृग-हरिण का है, जो सहज रूप से किसी की पकड मे नही आ सकता, जंगलो मे इधर से उधर लम्बी चौकड़ियाँ मारता रहता है, वह भी सगीत की मधुर ध्वनि सुनकर उसमे आसक्त हो जाता है, उस संगीत को श्रवण करने के लिए वह सगीत गायक के सामने चला जाता है और उसकी आसक्ति उसे वधन मे फँसा देती है। आज के अधिकाश मानवो का भी यही हाल है। छोटे-छोटे वच्चे भी जहाँ फिल्मो के अश्लील गीतो की गुंजार आ रही हो, वहाँ खड़े हो जाते है, वड़े-वड़े व्यक्ति अपने आवश्यक कामो को छोड़कर गीतो की गू ज मे आसक्त वन जाते हैं।

क्या आपने सोचा कि यह आसक्ति क्या गुल खिलाएगी ? कर्णेन्द्रिय पर आसक्ति जव सर्प और मृग को परतन्त्र वना देती है, उनके जीवन प्रणाश का कारण वन जाती है तो उसी कर्णेन्द्रिय के विषय मे आसक्त इन्द्रियरामी मानव की क्या दशा होगी ?

वंधुओ ! यह सोचने का विषय है कि आज आपको चिन्तन शील मस्तिष्क मिला है, वीतराग वाणी श्रवण करने को मिल रही है। इसे श्रवण करके भी यदि एन्द्रियक सुख मे फँसे रहोगे तो फिर आत्मानुरागी वनने का मौका कव मिलेगा ? □□

४७. रूपासक्ति का परिणाम

श्रोतेन्द्रिय का विषय कान से सम्बन्धित है तो चक्षु इन्द्रिय का विषय आँख से सम्बन्धित है। आँख के सामने भी अच्छे और बुरे दोनो प्रकार के रूप आते हैं। इन्द्रियरामी जीव अच्छे पर राग और बुरे पर द्वेष कर बैठता है, जो कि उसके पतन का कारण बन जाता है।

रूप के लोभी पतगिये को आपने देखा होगा, रात्रि मे जब बल्ब का तेज प्रकाश होता है तो उसे देखकर वह अज्ञानी पतगा उस पर मोहित हो जाता है, और उसे पाने के लिये उस पर झपापात करने लगता है। ज्योंही वह बल्ब पर गिरता है, त्योही उसके उष्ण प्रकाश से मूर्छित होकर जमीन पर गिर पडता है, कुछ क्षणो पश्चात् जब उसकी मूर्छा दूर होती है और वह पुनः उसी बल्ब के प्रकाश को पाने के लिए उस पर झपापात करता है, उस समय वह नही जान पाता कि इसी पर पूर्व मे झपापात किया था तथा इसकी उष्णता से मूर्छित होकर गिर पड़ा था। वह अज्ञानी बार-बार बल्ब पर झपापात करके अपने जीवन से हाथ धो बैठता है।

सुज्ञ माने जाने वाले मानव को उस पतंगिये के इस हाल पर तरस आती होगी।

सज्जनो! वह तो नासमझी के कारण से अपने जीवन को खो बैठता है पर समझदार कहलाने वाले मानव का क्या हाल हो रहा है? कही वह भी तो ऐसी अज्ञानता नही कर रहा है? रूप मे आसक्त मानव भी अपना भान खो बैठता है। हित-अहित के विवेक से विकल हो उठता है। उसकी प्रतिभा कुंठित हो जाती है। रूपासक्ति उसके इसी जीवन को ही नही जन्म-जन्मान्तर को बर्बाद कर देती है। बौद्ध धर्म के सुत्तपिटक मे भी इसी विषय को स्पष्ट करते हुए कहा है :—

पतन्ति पज्जोत–मिवाधि–पातका,
दिट्ठे सुत्ते इति–हेके निविट्ठा ॥

जिस प्रकार पतगे जलते प्रदीप के रूप से आकर्षित होकर, उस पर झपापात करते हुए अपना प्राणान्त कर देते हैं। उसी प्रकार दृष्ट एव श्रुत वस्तुओ के व्यामोह मे फसकर अज्ञ जन भी अपने जीवन का पतन कर लेते है। रूपासक्ति मानव को किस प्रकार पतन की ओर ढकेलती है । इसके लिए एक छोटीसी घटना है :—

रूप का लोभी एक श्रेष्ठी पतगियो की तरह ही रूप के मोहक जाल मे फंसा हुआ था। उसकी दृष्टि सुन्दर से सुन्दर रूप को देखने के लिये उत्कण्ठित रहती थी। अपनी पत्नी के रूप पर तो वह इतना अधिक आसक्त था कि उसका रूप सर्वाधिक सुन्दर मानता था। प्रायः अधिकाश समय उसका मस्तिष्क सुन्दर-सुन्दर रूपो की ही कल्पना किया करता था—मेरी पत्नी का रूप कितना सुन्दर है ?

एक वार उसकी पत्नी के मुंह पर भयानक फोडा हो गया, जिससे उसका रूप भी विकृत वन गया। फिर भी श्रेष्ठी के मन मे यह आसक्ति जमी हुई थी—मेरी पत्नी बहुत सुन्दर है। रात-दिन इन्ही विचारो में घुलते-घुलते आयुष्य वधन का समय आ गया। उस समय भी उसके यही विचार चल रहे थे—अहो . मेरी पत्नी कितनी रमणीय, प्रिय, सुन्दर है। इन्ही विचारो के मध्य मे श्रेष्ठी ने आयुष्य वधन पूरा किया और मरकर अपनी पत्नी के ही फोडे मे कीडे के रूप मे जन्म ले लिया।

वधुओ ! सोचिये अपने-अपने दिलो मे रूप के भयकर परिणामो को। कहां तो उन्नत मानव जीवन के साथ श्रेष्ठी को भौतिक तत्त्वो की समुपलब्धि थी और कहां उसके जीवन का कितना पतन हो गया, मानव जीवन को छोडकर एक किलबिले कीड़े के रूप में जन्म लेना पडा। अब श्रेष्ठी न मालूम कितने भवो तक ससार मे भ्रमण करेगा, कुछ कहा नही जा सकता।

रूपासक्ति मानव को कहां से कहां तक पहुंचा देती है। प्राग्-ऐतिहासिक घटनाएँ इस वात की साक्षी है, रावण और मणिरथ

भी तो रूप मे ही आसक्त हुए थे। सती सीता के रूप पर आसक्त हो रावण ने अपनी सोने की लका जला डाली। सारी ऋद्धि और समृद्धि ही नही गई, अपितु अपने जीवन से भी हाथ धोना पडा। यही हाल मणिरथ का हुआ था। जिस छोटे भाई युग वाहु को वह इतना अधिक चाहता था कि अपने बाद राज्य का उत्तराधिकारी उसे ही घोषित किया था, किन्तु सती मदन रेखा के रूप को देखकर मणिरथ बेभान हो गया। उसके हृदय मे रूपासक्ति की ऐसी विस्फोटक आग सुगल गई थी, जिस आग को बुझाने के लिए रूपासक्त मणिरथ ने अपने प्रिय भाई को भी छल बल के द्वारा खत्म कर डाला। इतने पर भी रूपासक्ति की आग शात न हो पाई। अन्तत: उस आग ने स्वय मणिरथ को ही खत्म कर डाला। इतिहास ऐसी एक नही अनेक घटनाओं से भरा पडा है।

□□

४८. सुगन्ध-दुर्गन्ध में आसक्ति भाव

चक्षु इन्द्रिय के बाद तीसरी इन्द्रिय घ्राण है। यह इन्द्रिय गध से सम्बन्धित है। पुद्गलो के परिवर्तन से कोई पदार्थ सुगन्ध के रूप मे तो कोई पदार्थ दुर्गन्ध के रूप मे परिवर्तित हो जाते हैं। सुगन्धित पदार्थों मे एन्द्रियक रमण ससार को बढाने वाला होता है, दुर्गन्धित पदार्थों पर घृणा भी आत्मा के पतन का कारण बनती है।

ससार के समस्त पौद्गलिक पदार्थ परिवर्तनशील है। पुद्गलो के परिवर्तन से सुगन्ध दुर्गन्धमय और दुर्गन्ध सुगन्धमय हो जाती है। अज्ञ मानव इस पौद्गलिक परिवर्तन के तथ्य को न समझकर सुगन्धित पुद्गलो मे आसक्त वन जाता है, यह आसक्ति भाव भी उसके जीवन को खत्म करने वाला वन जाता है। घ्राणेन्द्रिय के वशीभूत होकर कस्तूरी मृग कस्तूरी की सुगन्ध मे आसक्त होकर जगल मे इधर से उधर दौड लगाता हुआ अपने जीवन से हाथ धो वैठता है।

□□

४६. कटु परिणाम रसना का

जिह्वेन्द्रिय के वश मे होकर मानव खाद्य-अखाद्य के विवेक को न रखता हुआ, अभक्ष्य पदार्थों को भी खा बैठता है। जहाँ मानवो का आहार शाकाहार होना चाहिए वहाँ आज देश में मांसाहार का कितना तेजी से प्रचार-प्रसार हो रहा है। अण्डे जैसे मासाहारी तत्त्व को भी शाकाहार बतलाकर लोगो को खिलाने का प्रयास किया जा रहा है। अण्डे निश्चित रूप से मासाहार हैं। जिह्वेन्द्रिय के वश में होकर ऐसे अभक्ष्य पदार्थ को खाने वाले अपने जीवन को पतन के अधकूप मे ढकेल देते हैं।

सही माने मे सोचा जाय तो मानव का आहार मास नही है। आपने कभी सुना या देखा होगा कि डॉक्टर लोग जब किसी मरीज को खून की बोतल चढाने लगते हैं तब सबसे पहले उसके खून की जाच की जाती है। मरीज के शरीर मे रहा हुआ रक्त और उसे दिये जाने वाले रक्त का मिलान हो जाय, तब ही उसके रक्त चढाया जाता है। यदि रक्त का मिलान न होने पर रक्त दे दिया जाय तो वह घातक परिणाम उपस्थित कर देता है।

सज्जनो! विचार करने की बात है कि जब मानव के रक्त का भी मिलान आवश्यक है तो जो पशुओ का मांस है क्या, वह बेमेल मास मानव के लिये घातक सिद्ध न होगा? मासाहार परलोक मे तो हानिकारक होता ही है किन्तु इस जीवन के लिये भी घातक सिद्ध होता है। सिद्धान्त की दृष्टि से मांसाहार नरक का हेतु बतलाया गया है।

जिह्वेन्द्रिय के वश मे होकर व्यक्ति अपने जीवन को किस प्रकार खो बैठता है, इसके लिए एक शास्त्रीय रूपक है—

एक सम्राट् के शरीर मे भयंकर रोग पैदा हो गया। अनुभवी चिकित्सको ने उनका इलाज करना प्रारम्भ किया। सही तरीके से इलाज होने पर सम्राट् का भयकर रोग भी समाप्त हो गया। सम्राट् स्वस्थ हो गया। चिकित्सको ने सम्राट् को यह स्पष्ट हिदायत दी—आपको अगर स्वस्थ रहना है तो आप कभी भी आम्र फल का सेवन न करें। आम्र फल आपके लिए अपथ्य है। जिस दिन भी आपने आम्र फल खा लिया तो उत्पन्न हुए रोग का कोई इलाज नहीं होगा। सम्राट् ने चिकित्सको की बात ध्यान से

सुनी और मन मे यह निर्णय किया कि मैं अब कभी भी आम नही खाऊँगा ।

अपथ्य तत्त्व के न खाने से सम्राट् की स्वस्थता बढने लगी । सम्राट् का जीवन शाति से व्यतीत होने लगा । बहुत वर्ष व्यतीत हो गये । एक दिन सम्राट् जब अपने प्रधान को साथ लेकर जंगल मे भ्रमण करने के लिये निकले । घूमते-घूमते जब वे थक गए, तो विश्रान्ति के लिये किसी वृक्ष की छाया मे बैठने लगे । सयोग वश वह वृक्ष आम का ही था । आम्र वृक्ष को देख कर मत्री ने कहा—राजन् ! अपने को इस वृक्ष की छाया मे नही बैठना है, हम दूसरे वृक्ष की छाया मे चलें ।

सम्राट् ने कहा—वृक्ष की छाया मे बैठने मे क्या है । वैद्यो ने तो आम खाने को मना किया है, छाया मे बैठने को तो नही । राजा उसी वृक्ष के नीचे बैठ गया, मंत्री भी राजा के साथ वही बैठ गया । कुछ समय के बाद राजा की दृष्टि वृक्ष पर लटक रहे, सुन्दर-सुन्दर, भीनी-भीनी सुगन्ध देने वाले आम्र फलो पर पड़ी ।

राजा ने कहा—देखो मत्रीवर · कितने सुगन्धित व सुन्दर फल हैं, कितने सुस्वादु व मधुर होगे ये फल ?

मत्री ने कहा—राजन् कुछ भी हो आपके लिये तो यह अपथ्य है, आपको तो मन मे भी इन्हे खाने की बात नही सोचनी चाहिये । किन्तु राजा आम्र फलो पर मुग्ध हो चुका था । पथ्य-अपथ्य की बातो की ओर उसका ध्यान नही गया । सम्राट् बोला—अरे ! अब तो बहुत वर्ष बीत चुके हैं, मेरी बीमारी भी अब बिल्कुल चली गई है । अब किस लिये पथ्य रखा जाय, इतने मे तो एक पका आम टूटकर सम्राट् की गोदी मे आ पडा । मैं कोई बहुत आम तो खा नही रहा हूँ, यह कहते-कहते मत्री के बहुत मना करने पर भी राजा उसे खाने के लिये उद्यत हुआ । अब भी मत्री ने खूब समझाया पर जिह्वा के वश हुआ सम्राट् कहाँ सुनने वाला था ? आखिर उस आम को चूस ही लिया । अपथ्य पदार्थ के अन्दर जाते ही रोग भयकर रूप से उभरा और सम्राट् की तत्काल मृत्यु हो गई । यह है रसेन्द्रिय के वश मे न होने का परिणाम । उत्तराध्ययन सूत्र में स्पष्ट कहा है—

अपत्थं अम्बग भोच्चा, राया रज्ज तु हारए

अपथ्य आम को खाकर सम्राट् अपना राज्य एव जीवन गवा बैठा । □□

५०. दुर्गतिकारिका स्पर्शना

रसना के पश्चात् पाचवी इन्द्रिय स्पर्शना है। स्पर्श सुखों मे रमण, मानवीय जीवन को अन्दर से खोखला वना देता है। स्पर्श विषय मानव को क्षणिक समय के लिए सुखकारी महसूस हो सकता है, अतत: तो महा दु:ख देने वाला वनता है। उत्तराध्ययन सूत्र मे ही प्रभु ने वतलाया है—

खण मित्त सुक्खा, वहुकाल दुक्खा,
पगाम्म दुक्खा, अणिगाम–सुक्खा।
ससार मोक्खस्स, विपक्ख भूया,
खाणी अणत्थाण–उकाम भोगा।

यह स्पर्श विषयक काम भोग क्षण मात्र सुख देने वाले हैं, किन्तु दीर्घकाल तक दु·ख देने वाले है। जिसमे स्वल्प सुख हो और वहुत दु:ख हो, वे सुखदायी कैसे हो सकते हैं? ये ससार को वढ़ाने वाले है, अनर्थों की खान हैं, तथा मुक्ति के लिए शत्रु के समान है।

वधुओ! स्पर्शनेन्द्रिय मे रमण करने वाला मानव कभी भी वास्तविक शाति प्राप्त नही कर सकता। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती इस स्पर्श सुख मे इतना अधिक आसक्त था कि मृत्यु के अन्तिम क्षणो मे भी पटरानी कुरुमति, कुरुमति का नाम रटता हुआ मृत्यु को प्राप्त हुआ। परिणामस्वरूप चक्रवर्ती के विशाल वैभव को छोडकर भयकर दु.खप्रद सातवी नरक का मेहमान वन गया।

महाशक्ति सम्पन्न हाथी भी इसी स्पर्श सुख के वशीभूत होकर अपनी प्रवल शक्ति को गवा वैठता है।

एक-एक इन्द्रिय पर आसक्ति भी महान् अनर्थ का कारण वन जाती है। इसलिये आनन्दघनजी ने श्रेयास प्रभु की प्रार्थना के माध्यम से स्पष्ट कहा है—

सयल ससारी इन्द्रियरामी, मुनिगण आतमरामी रे।

एन्द्रियक विषयो में रमण करने वाला प्राणी ससार के भव प्रपंच को वढाता है।☐

५१. सुख पुद्गलों में नहीं स्वयं में

सुख पौद्गलिक पदार्थों मे नही है, स्वय आत्मा मे है। आत्मा वैभाविक अवस्था मे रहती हुई पुद्गलो मे सुख मान बैठती है। इन्द्रिया उन भौतिक तत्त्वो को पाने को उत्कंठित हो उठती हैं। इन्द्रियो के पीछे आत्मीय शक्ति काम करती है। कोई भी इन्द्रिय बाहरी तत्त्वो से अधिकाधिक सुख की प्राप्ति नही कर सकती। जिस इन्द्रिय को जिस विषय से सुख की अनुभूति होती है उस इन्द्रिय को उसी विषय से बार-बार सम्बन्धित किया जाय तो वह विषय, सुख देने के स्थान पर दुःखप्रद बन जायेगा।

जिस प्रकार कान है, कान मधुर गीत सुनने का रसिक है अर्थात् कर्मबद्ध आत्मा कान के माध्यम से गीत सुनकर सुखानुभूति करती है। यदि उसी गीत को उसे बार-बार सुनाया जायेगा, तो वह गीत जो सुख देने वाला था, वह उतना ही दुःख देने वाला बन जायेगा।

जिह्वा के माध्यम से प्राणी जिस मिष्ठान्न को अधिक खाना चाहते हैं उसी मिष्ठान्न को उसे बार-बार खिलाया जायगा तो वह उस के लिए हानिकारक बन जायगा। यही स्थिति सभी इन्द्रियो की है। आत्मा इन्द्रियो के माध्यम से कभी पौद्गलिक वस्तुओ से शाश्वत सुख की अनुभूति नही कर सकती है, सुख बाहर नही अन्दर है।

□□

५२. साधना क्या उधार का धंधा है ?

मानव का मस्तिष्क प्रत्यक्ष फल के लिए लालायित रहता है। वह प्रत्येक क्रिया का परिणाम प्रत्यक्ष देखना चाहता है। साधना का परिणाम भी वह चटपट और प्रत्यक्ष में प्राप्त करना चाहता है। वह उधार का धधा पसन्द नही करता, वह रोकड-नगद का धंधा चाहता है। उसके सामने यह प्रश्न खडा होता है कि आत्मोत्थान के लिए की जानेवाली साधनाओ का परिणाम इसी जन्म मे मिलेगा या भवान्तर मे मिलेगा ? यदि साधनाओ का फल परलोक मे ही मिलता है तो वह उधार का धधा है। यदि प्रत्यक्ष मे उसका परिणाम प्राप्त नही होता तो उसके प्रति मानव का मस्तिष्क अभिप्रेरित नही होता। यह धारणा सही नही है कि साधनाओ का फल परलोक मे ही मिलने वाला है। साधना उधार का धधा नही है। वह नकद का व्यापार है। जितनी-जितनी और जिस-जिस रूप मे साधना की जाती है उसका फल भी उतने ही अशो मे प्राप्त होता है। जिस रूप मे साधना की आराधना होती है उस रूप मे उसका परिणाम भी यहां परिलक्षित होता है। साधना का सुफल यहां भी प्राप्त होता है और भवान्तर मे भी उसकी परम्परा भव्य फलप्रदायिनी बनती है। जिसने साधना के द्वारा इस जीवन को रमणीय बनाया, वह भवान्तर मे भी रमणीयता को प्राप्त करेगा। तीर्थङ्कर देवो मे आत्मा के विकास के चौदह सोपान बताये हैं, जिन्हे आगम की भाषा मे गुणस्थान कहते है। आत्मा अपने लक्ष्य की ओर ज्यो-ज्यो आगे बढता जाता है त्यों-त्यो उसकी साधना के सुफलो का प्रत्यक्ष मे अनुभव होता जाता है। तेरहवें गुणस्थान मे जब वह पहुँचता है तो उसे

अनन्त-ज्ञान, अनन्त-दर्शन, अनन्त बल-वीर्य और अनन्त चरित्र की प्राप्ति होती है। चौदहवा गुणस्थान आत्मा की सर्वोत्कृष्ट विकसित अवस्था है जिसमें आत्मा परमात्म-स्वरूप बन जाता है, सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो जाता है। साधना का यह सुफल प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। इस मानव-शरीर से ही यह अवस्था, प्राप्त की जा सकती है। अनन्त आत्माओ ने अतीत काल में इस मानव-भव से परम पद की प्राप्ति की है, वर्तमान में भी विदेहादि क्षेत्रो से कर रहे है और अनागत काल मे भी परम पद प्राप्त करेंगे। अत· यह कहा जा सकता है कि साधना की आराधना उधार का धधा नही अपितु नकद का व्यापार है।

☐

५३. वैज्ञानिक मार्ग

यह भलीभाति सिद्ध है कि आत्मा की समग्र उपलब्धिया मानव-भव मे ही प्राप्त होती हैं। इसके छूट जाने के पश्चात् आत्मा का अवस्थान मात्र रहता है। वहा कोई नवीन उपलब्धि नही होती। इसलिए मानव-भव मे प्राप्त अध्यात्म मार्ग को वैज्ञानिक मार्ग की सज्ञा दी गई है। वैज्ञानिक मार्ग का तात्पर्य भौतिक विज्ञान के मार्ग से नही है। लेकिन भौतिक प्रयोगशालाओ में जैसे उपलब्धि प्रत्यक्ष की जाती है वैसे ही आध्यात्मिक जीवन की प्रयोगशाला मे जो कुछ भी आन्तरिक उपलब्धिया साधक को प्राप्त होती हैं, उनको वह प्रत्यक्ष मे देखता हुआ चला जाता है। भौतिक विज्ञान की उपलब्धिया वाह्य होती है अतएव अन्य व्यक्ति उन्हे देख सकते है, जब कि आध्यात्मिक जीवन की उपलब्धिया आन्तरिक होती हैं अतएव अन्य व्यक्ति उन्हे नही देख पाते। साधक स्वयमेव उनका अनुभव करता चला जाता है। आध्यात्मिक शक्ति का स्वरूप ही इस ढग का है कि वह वाहर निकालकर नही वताई जा सकती। वडे से वडा विद्वान् अपनी विद्वत्ता के अनुभव को हथेली पर निकाल कर नही दिखा सकता। आध्यात्मिक जीवन की स्थिति भी ऐसी ही है। यदि मानव आध्यात्मिक जीवन को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान करे और प्रारम्भ से ही अपनी साधना के सूत्र को सक्रिय वनावे तो कठिनाइयो के वावजूद वह एक दिन सफलता की भूमिका पर अवश्य पहुँच जाता है।

□□

५४. कोमल मस्तिष्क पर शिक्षा का भार

प्राचीन काल के सुज्ञ शिक्षक एव सरक्षक बालक के हित की दृष्टि से 'व्यवस्था' करते थे। बालक के मस्तिष्क के कोमल तन्तु अध्ययन करने मे सक्षम न बन जाय तब तक वे बालक पर शिक्षा का भार नही डालते थे। योग्य वय मे, योग्य समय पर किया गया कार्य फलीभूत हुआ करता है। अपरिपक्व स्थिति मे डाला गया भार प्रतिभा को कुण्ठित कर देता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि जिसका प्रारम्भ सुधर जाता है उसका अगला जीवन भी सुधर जाता है। जिसका प्रारम्भ बिगड जाता है उसकी सारी जिन्दगी बिगड जाती है। हलुवे की चासनी प्रारम्भ मे बिगड़ गई तो हलुवा बिगड़ जायेगा। वैसे ही जीवन की चासनी प्रारम्भ मे बिगड गई तो पूरी जिन्दगी बिगड जाती है। अतएव आरम्भिक अवस्था मे विशेष ध्यान देना चाहिए।

प्राचीन काल मे मनोवैज्ञानिक आधार पर शिक्षा दी जाती थी। शिक्षा का उद्देश्य जीवन को सस्कारी बनाना होता था, धनोपार्जन नही। आज के युग मे धन की लालसा के कारण विचित्र दशा बन रही है। आज के बालक धन कमाने की मशीन जल्दी से जल्दी कैसे बने, इसी भावना से उन्हे कोमल-वय मे स्कूलो मे प्रविष्ट कराया जाता है। वहां उन पर इतना भार लाद दिया जाता है कि उनका कोमल मस्तिष्क क्षत-विक्षत हो जाता है। कोमल वय मे अधिक भार डालना उनके जीवन को दबोचना है। माता-पिता को इस विषय मे गम्भीरता से सोचना चाहिये।

□□

५५. उपदेष्टा समदृष्टा होता

हितोपदेशक वीतराग देव समदर्शी होते हैं। वे सबको समान रूप से हितोपदेश सुनाते हैं। वे आशसारहित होते है अतएव जिस भावना से सम्राट् चक्रवर्ती राजा और श्रीमन्तो को उपदेश देते हैं उसी भावना से तुच्छ, दीन-हीन अनाथ को भी धर्मोपदेश प्रदान करते हैं। उनके यहा सम्पन्न-विपन्न का भेद नही होता, स्त्री-पुरुष का भेद नही होता, गुणी-अगुणी का भेद नही होता, पुण्यशाली या पुण्यहीन का भेद नही होता। वे सबको एकान्त हितकारी उपदेश ममभाव से प्रदान करते हैं। आगम मे कहा है—

"जहा पुण्णस्स कत्थइ तहा तुच्छस्स कत्थई ।
जहा तुच्छस्स कत्थइ तहा पुण्णस्स कत्थइ ॥"

उपदेष्टा अनुग्रह बुद्धि से जैसे पुण्यशाली सत्ता-सम्पन्न को उपदेश देते हैं वैसे ही तुच्छ-रंक को भी उपदेश देते हैं।

□□

५६. मानव सोचें

कर्मबद्ध आत्मा चौरासी लाख जीव-योनियो मे परिभ्रमण करती रहती है परन्तु मानव-तन के अतिरिक्त अन्यत्र कही भी परम विश्राम की विधि उसे सुलभ नही है। आत्मविकास का मानव जीवन के साथ महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध जुडा हुआ है। जितना भी विकास दृष्टिगत होता है—चाहे वह भौतिक क्षेत्र मे हो अथवा आध्यात्मिक क्षेत्र मे, वह मानव-तन से ही सम्भव हो सका है। अन्य जीवनो मे विकास का यह अवसर नही है। ऐसा सुन्दरतम मानव-जीवन जिन्हें उपलब्ध है, वे इस सम्बन्ध मे समग्र दृष्टिकोण से सोचें कि किस प्रकार वे अपने जीवन का सर्वोच्च विकास उपलब्ध कर सकते हैं।

□□

५७. चातुर्मास कल्प

शास्त्रीय मर्यादानुसार जैन मुनियो के लिये कल्पो का विधान किया गया है। उनमे चातुर्मास कल्प एक महत्त्वपूर्ण कल्प है। शास्त्र मे निर्दिष्ट है कि मुनि वर्ष के आठ मासो पर्यन्त मे सयम और तप से आत्मा को भावित करता हुआ ग्रामानुग्राम विचरण करे। जैसे बहता हुआ पानी निर्मल होता है उसी तरह विचरण करता हुआ मुनि भी अनासक्त, अप्रतिबद्ध और निर्ममत्व होने के कारण निर्मल बना रहता है। अधिक समय तक एक स्थान पर रहने से ममत्व पैदा होने की सम्भावना रहती है। उसको टालने के लिए मुनि को अप्रतिबद्ध विहारी होना चाहिए। जिस सयम की साधना और रक्षा हेतु शेषकाल मे विहार की अनुज्ञा है, उसी संयम की साधना और रक्षा हेतु ही चातुर्मास काल मे एक स्थान पर रहने की भी अनुज्ञा है। जीवोत्पत्ति विशेष होने के कारण गमनागमन द्वारा उनकी विराधना टालने के लिए चातुर्मास कल्प मे मुनियो को एक स्थान पर रहने का शास्त्रीय निर्देश है।

इस कल्प का उद्देश्य मुनियो की आत्मसाधना तो है ही परन्तु इसके साथ ही सघ, तीर्थ, समाज और सर्व साधारण के कल्याण की भावना भी इसमे सन्निहित है। मुनि जहा चातुर्मास करे, वहां की जनता को धर्माराधन की प्रेरणा करते है। सर्वसाधारण जनता को अवलम्बन की आवश्यकता होती है। मुनियो के अवलम्बन से जनता मे धार्मिक भावनाएँ जागृत होती हैं, धर्म के प्रति रुचि उत्पन्न होती है और उनकी प्रेरणा से जनता का नैतिक और आत्मिक धरातल समुन्नत होता है। प्रभु महावीर की शासन व्यवस्था बहुत ही उत्तम कोटि की है। इसमे व्यक्तिगत कल्याण के साथ ही साथ समष्टि का कल्याण भी सन्निहित है। इसी दृष्टिकोण से चातुर्मास-कल्प जहां मुनियो के लिए आत्मकल्याण का साधक है, वही सघ एव समाज के लिए भी अत्यन्त हितावह और कल्याणकारी है। साधु-सत आत्म-कल्याण के साथ ही सर्वसाधारण को बिना किसी भेदभाव के आशसा रहित होकर, एकान्त परमार्थ दृष्टि से उपदेश देकर उनके जीवन को सस्कारित करने का प्रयत्न करते है। वे स्वय भी सयम मार्ग की आराधना करते हैं और अन्य को भी संयम के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते है।

५८. तप से शुद्धि

जिस प्रकार आग मे तपकर सोना निखर उठता है, उसी तरह तपस्या की आग मे आत्मा का मैल जल जाता है और वह शुद्ध स्वर्ण की तरह निखर उठती है। आत्मा के विकारो को जलाने के लिए तप आवश्यक है। वह आत्म-शुद्धि का अनिवार्य अग है। जिस प्रकार शरीर के रोगो का उपचार प्रारम्भ करने के पूर्व वैद्य विरेचन (जुलाब) देकर पेट की शुद्धि करता है, ऐसा करने के बाद ही औषधि अपना प्रभाव प्रकट करती है, अन्यथा वह निरर्थक सिद्ध होती है। इसी तरह आध्यात्मिक जीवन के वैद्य प्रभु महावीर ने आत्म-शुद्धि के लिए प्रारम्भिक उपचार के रूप मे तप का प्रतिपादन किया है। आध्यात्मिक शुद्धि के लिए भूमिका के रूप मे तप की आवश्यकता है। तप के माध्यम से भूख की परतन्त्रता मिटती है, शरीर की आसक्ति घटती है और भावनाओ मे निर्मलता आती है। यही से आध्यात्मिक शुद्धि की भूमिका शुरू होती है। दोषो को हटाने की क्षमता आती है। कषायो को शमन करने की योग्यता प्रकट होती है। आत्मा की आर्द्रता, कोमलता, स्निग्धता और सरलता पैदा होती है जिससे वह धर्म और मोक्ष रूपी अंकुर को उत्पन्न करने मे समर्थ बनती है।

जिस मिट्टी मे आर्द्रता और मृदुता नही है, उसमे कोई अकुर नही फूट सकता। अतएव चतुर किसान बीज बोने से पहले भूमि की आर्द्रता की अपेक्षा रखता है। मिट्टी के मुलायम होने पर ही वह बीज वपन करता है अन्यथा बीज के व्यर्थ चले जाने की आशंका रहती है। इसी तरह धर्म और मोक्ष के अकुर को यदि आप प्रकट करना चाहते हैं तो पहले आत्मा को सरल, आर्द्र और सुकोमल बनाना चाहिए। तप के द्वारा यह भूमिका प्राप्त होती है तथा इस स्थिति को प्राप्त करने मे ही तप की सार्थकता है।

• • •

५६. समीक्षण में अवलोकन प्रभु का

स्वयं प्रभु महावीर ने लोक का अवलोकन समीक्षण दृष्टि के साथ किया था। सूत्रकृताङ्ग सूत्र के वीरस्तुति नामक अध्ययन की गाथा मे बतलाया है—

उड्ढ अहेय तिरिय दिसासु, तसाय जे थावर जेयपाणा ।
से निच्च निच्चेहिं समिक्ख पन्ने दीवे व धम्म समिय उदाहु ।।

सर्वज्ञ, सर्वदर्शी प्रज्ञा पुरुष प्रभु महावीर ने ऊर्ध्व लोक, अधः लोक, तिर्यक् लोक मे स्थित त्रस एव स्थावर जीवो की अनित्यता का समीक्षण कर, दीपक के समान धर्म को व्याख्यायित किया।

बन्धुओ ! प्रभु के द्वारा सही धर्म की प्ररूपणा भी समीक्षण दृष्टि के आधार पर ही हुई है। जब तक अन्तरग दृष्टि से राग-द्वेष का मनोमालिन्य नही हटता, विचारो मे समता भाव नही आता, तब तक धर्म की यथार्थ विवेचना नही हो सकती।

प्रभु ने स्पष्ट कहा है—

"पन्ना समक्खिए धम्म" हे पुरुष ! प्रज्ञा से धर्म का समीक्षण करो। समता के धरातल पर ही बाह्य एव अन्तरग का अवलोकन करना है। यह स्थिति ही समीक्षण ध्यान की कोटि मे आती है। इस सम्यक् अवलोकन के लिए शरीर की बाह्य और भीतरी दोनो ही प्रकार की जितनी भी सधियाँ हैं उनको झुकाना होगा। बाह्य और अन्तरग दोनो ही सधियो से जब समीक्षण पूर्वक नमन होगा तब निश्चित रूप से सभी पापो का नाश हो जाएगा।

• • •

६०. समीक्षण का प्रभाव

साहस और धैर्य के साथ की जाने वाली प्रगति एक दिन परिपूर्णता को प्राप्त कराने वाली होती है।

चरम तीर्थंकर प्रभु महावीर ने घातिक कर्म की क्षपणा के लिए, ज्ञान शक्ति की परिपूर्णता के लिए वर्षों तक साधना की थी। समीक्षण दृष्टि से अन्तरग और बहिरग को निहारा।

जीवन के कण-कण से कषायो का विलगीकरण कर डाला।

आत्मा का परिपूर्ण शोधन किया। ज्ञान का अभिनव आलोक जगमगा उठा। शाति और समता का स्रोत प्रवाहित हुआ। जिसका अनूठा प्रभाव कि प्रभु के सान्निध्य मे जन्म-जात शत्रु सर्प और नेवला, शेर-बकरी भी प्रेम से निर्वैर भाव से बैठते।

ऐसी साधना, प्रत्येक साधनाशील साधक कर सकता है। लेकिन जो साधु साहस और धैर्य का अवलम्बन न लेकर चापल्य वृत्ति वाला बन जाता है, वह साधक कभी भी उन्नत दशा को प्राप्त नही कर सकता।

उदाहरण के रूप मे एक स्थल पर मनुष्य पहुँचा, जहाँ पर हीरे और ककर का ढेर लगा हुआ था, उसमे से कुछ भी ग्रहण करने की उसको छूट थी। इतना होने पर भी वह व्यक्ति उनमे से रत्न न लेकर ककर उठाने लगता है, तो ऐसे व्यक्ति को आप क्या समझेंगे? मूर्ख ही तो समझेंगे ना। सज्जनो! यह तो पौद्गलिक तत्त्व से सम्बन्धित बात हुई। किन्तु जो आत्मा साधु जीवन स्वीकार कर लेती है, उस आत्मा को आध्यात्मिक जीवन का अद्भुत खजाना हस्तगत हो जाता है। वह इससे इच्छानुसार बहुमूल्य रत्नो के तुल्य ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि विविध प्रकार के रत्नो को प्राप्त कर सकता है। जो रत्न क्षणिक नही, शाश्वत शाति प्रदान कराने वाले होते हैं।

• • •

६१. समीक्षण साधना साधु जीवन में

आध्यात्मिक रत्नो का सग्रहण गृहस्थ जीवन मे उतना नही हो पाता क्योकि गृहस्थ जीवन मे मनुष्य के सामने कई प्रकार की झझटें, समस्याएँ रहती है। उनमे भी मूलभूत आर्थिक समस्याओ को हल करने के लिए उसका मस्तिष्क दिन-रात तना रहता है। लेकिन साधु जीवन मे ऐसी कोई स्थिति नही रहती। उसके समक्ष मात्र आध्यात्मिक साधना का ही उद्देश्य रहता है। वह सभी प्रकार के चिन्तन से विप्रमुक्त रहता है। एक समय का भोजन भी मिलेगा, या नही, वह चिन्ता भी उसे नही रहती।

आत्मा को मलीन बनाने वाले पाँचो आश्रव का निरोध होता जाता है। बद्ध कर्मों का क्षय करना एव अध्यात्म का जागरण ही चलता रहता है। आत्मा के भीतर मे विद्यमान अमूल्य रत्न परमात्मा स्वरूप को प्रकट करना है।

इतना सब कुछ होते हुए भी जो साधक साधनाशील जीवन मे अमूल्य रत्नो का चयन नही करता है, समीक्षण पद्धति से जीवन का सशोधन नही करता है, किन्तु अपने जीवन मे कषायो के पत्थरो को एकत्रित करता रहता है। मत्र-तत्र, जादू-टोना आदि सासारिक कार्यों मे रच-पच जाता है, सत्कार, सम्मान का कामी बन जाता है। ऐसा साधक ककरो से युक्त रत्नो के ढेर मे से पत्थरो को ही एकत्रित करता रहता है।

अविनाशी लक्ष्य से हटकर विनाशी तत्त्व की ओर मुड जाता है। उसकी वृत्ति मोक्ष प्राप्ति से हटकर ससार की ओर गति करने लगती है। उसकी साधना संसार को घटाने वाली न बनकर उसे बढाने वाली होती है। ऐसा साधु, साधु-जीवन की भूमिका पर नही रहता। ऐसे साधको के जीवन से कभी भी विलक्षण प्रभाव नही पडता। जो साधु अभी तक आत्म समीक्षण मे न लगकर, मत्र-तत्र मे पड़ा है उसके जीवन मे अमूल्य रत्नो का विलक्षण प्रकाश नही होने से वह दूसरो को प्रकाश कैसे दे सकता है? □

६२. समीक्षण साधना प्रभु के जीवन में

प्रभु महावीर का जीवन अलौकिक रत्नो के तीव्र प्रकाश से जगमगा रहा था।

जिसका प्रभाव एक कोस, दो कोस नही अपितु १०० कोस की दूरी तक निरन्तर फैल रहा था। जिनके सामने शेर के मुख के नीचे ही बकरी निर्भयता के साथ बैठती थी।

भगवान् महावीर ने यह जीवन्त अलौकिक शक्ति जिस शरीर के माध्यम से पाई, वह शरीर कोई आकाश से नही टपका था और नही कोई पाताल से निकला था। जिस प्रकार आज मानव का शरीर माता की कुक्षि से बाहर आता है, उसी प्रकार प्रभु महावीर का शरीर भी माता की कुक्षि से ही बाहर आया था। अर्थात् आप लोग जैसे जन्मे, वैसे ही प्रभु भी जन्मे थे। उनकी विशिष्ट पुण्यवानी होने से शरीर की रचना मे कुछ विशेषता थी, मूल अगो में कोई परिवर्तन नही था। जन्म लेने के बाद उन्होने माता का दूध पिया और आपने भी माता का दूध पिया। बाद मे जैसा खाना आप खा रहे हैं, वैसा ही लगभग उन्होने भी खाया।

दीक्षा लेने के बाद तो भोजन की सरसता भी छूट गई थी। कभी-कभी तो बड़ी तपस्या के पारणो मे तीन दिन के बासी उडदो के बाकले का आहार किया था।

यदि आपको कदाचित् तपस्या का पारणा हो या तपस्या का न हो वैसे ही आपके सामने उडदो के बाकले रख दे तो क्या आप भोजन कर लेंगे, कही क्रोधित तो न हो जाओगे, जहाँ भगवान महावीर ने समभाव की साधना के साथ ३ दिन के बासी बाकलो से भी दीर्घ तपावधि का पारणा कर लिया था। क्योकि उनका ध्यान समीक्षण था। जिन्होने ससार के समस्त पदार्थों को यथार्थता के परिप्रेक्ष्य मे देखा था। जिन्हे पौद्गलिक परिवर्तन का स्पष्ट विज्ञान था। जिनके अणु-अणु मे आनन्द रस की झलक थी, ऐसी शक्ति को

कितना ही दबाने का प्रयास किया जाय वह प्रकट हो ही जाती है। इत्र की शीशी का मुँह बन्द हो और आप उसे जेब मे दबाकर बैठ भी जायें तथापि उसकी खुशबू आए बिना नही रहेगी। इसी प्रकार जब काम-क्रोध, मद, मोह की गन्दगी सर्वथा हट जाती है, आन्तरिक शान्ति का समुद्र प्रवाहित होने लगता है, तो उससे सहज ही जन-मानस प्रभावित होने लगता है। ठीक इसी प्रकार प्रभु के जीवन मे से भी काम, क्रोध, मद, मोह का विलगीकरण हो चुका था। आत्म-शान्ति का निर्झर प्रवाहित होने लगा था, परिणामस्वरूप जन मानस-क्षेत्र सरसब्ज होने लगा था। जन मानस ही नही पशु-पक्षी जगत् भी प्रभु के आदर्शमय जीवन से प्रभावित था।

यह सब देखा जाय तो समीक्षण दृष्टि का ही मूल प्रभाव था। प्रभु ने अपनी दृष्टि इतनी समतामय बना ली थी कि वे सदा समता भाव के साथ अखिल विश्व का इक्षण दर्शन करते थे। अच्छी या बुरी वस्तु पर राग-द्वेष की उत्पत्ति नही होने देते। समीक्षण पर जोर देते हुए प्रभु ने कहा है—

"तम्हा उ मेहावी समिक्ख धम्मं"

हे मेघावी ! धर्म का समीक्षण करो। वस्तु स्वभाव को धर्म कहते है। अतः विश्व की सम्पूर्ण वस्तुओ के प्रति, चाहे वे जीव रूप मे हो या अजीव रूप मे, उनका सम्यक् प्रकार से, समता के साथ ईक्षण करो। जब इस प्रकार ईक्षण की प्रवृत्ति बढेगी तो अवश्य ही एक दिन सम्पूर्ण विश्व को समीक्षण कर सकोगे और वह समीक्षण तभी सम्भव है जब अन्त का निरन्तर सशोधन व समीक्षण चलता रहेगा।

□□

६३. समीक्षण करो : अन्तरंग का

जीवन का चरम लक्ष्य पाने के लिये अन्तरग के जीवन का समीक्षण करना होगा। अन्तरग मे जहा ज्ञान की पवित्रता और निर्मलता रही हुई है, वही पर अज्ञान की अशुद्धि भी रही हुई है। इसी अन्तरग मे जहा ज्ञान का कल्पतरु है, वही अहकार का विषैला वृक्ष भी है, इस प्रकार के द्वन्द्वात्मक तत्त्व एक ही स्थल पर समाए हुए हैं। साधक को अपने अन्तरंग का विलक्षण प्रज्ञा से समीक्षण करना होगा, सम्यक् प्रकार से वीक्षण करने के बाद ही सशोधन किया जा सकता है। जिस प्रकार ककर भरे धान्य से संशोधन द्वारा ककरो से धान्य अलग किया जा सकता है, वैसे ही आत्मा और कर्म की एकाकारता का समीक्षण कर सत्पुरुषार्थ के द्वारा उसका सशोधन करना चाहिये।

□□

६४. वैभाविक परिणतियां

अनादि अनन्तकाल से विभाव की परिणतिया आत्मा के साथ चली आ रही हैं। ये वैभाविक वृत्तियाँ इस रूप से आत्मा के साथ सम्वद्ध हो चुकी है कि स्वय आत्मा उन्हे अपना निजी स्वरूप ही मान बैठी है। उन विभाव की परिणतियो से स्वत्व का विलगीकरण मानव जीवन मे ही पूर्णतः हो सकता है। यह विलगीकरण तभी सम्भव है जवकि मानव इस दिशा मे गतिशील बने। कितना ही लम्बा रास्ता हो यदि उस दिशा मे चलने वाला व्यक्ति क्यो न धीरे-धीरे ही चल रहा हो तथापि दीर्घ कान्तार को अन्तत. पार कर ही लेता है। विभाव की परिणतियो के विलगीकरण का पुरुषार्थ यदि गतिशील है तो एक दिन आत्मा अपने स्वत्व को परिपूर्ण प्रकट कर सकती है। वैभाविक वृत्तियो मे ही रहने वाला प्रेय मार्ग का राही कभी भी शाति की अनुभूति नही कर पाता।

□□

६५. अंतरंग का विज्ञान, बाह्य जीवन से

वोध पाने का सम्यक् अवसर/वास्तविक समय मनुष्य जीवन मे मिला है। मनुष्य जीवन की ही ऐसी विशेषता है कि जिसमे आत्मा समग्र विश्व का विज्ञान और इस विज्ञान के अन्तर्गत आत्मा और परमात्मा का विज्ञान भी प्राप्त कर सकती है। इस मनुष्य तन को यह आत्मा अगीकार करके चल रही है परन्तु मनुष्य जीवन के योग्य कर्त्तव्य कर्म को जानने की बहुत कम कोशिश करती है। मानव दो हाथ, दो पैर, नेत्र, कर्ण, नाक, जिह्वा और स्पर्शेन्द्रिय के साथ सर्वत्र परिलक्षित होता है। उन सचालित अवयवो से उसकी भीतरी शक्ति का पता लग सकता है कि वह स्वय अपने आप मे क्या है और बाहर मे किस रूप मे है। बाहरी वस्तु को बाहर से देखने पर बाहर का स्वरूप ही ज्ञात हो सकता है। भीतर का अनुमानत कुछ ज्ञान किया जा सकता है। व्यक्ति आम के मौसम मे जब आम देखता है तो यह ठीक है या वो ठीक है, इसकी पहचान ऊपर के आकार-प्रकार से ही होती है। आम के ऊपरी स्वरूप को ठीक तरह से पहचान करके वह उसको खरीदता है और अनुमान करता है कि इसका आकार प्रकार ऊपर का ठीक है तो इसमे रस भी मीठा होगा, और अच्छा होगा। बहुलता उसी की रहती है। और जैसा वह अनुमान करता है वैसा ही आम का रस निकल जाता है। बाहर की प्रक्रिया, बाहर का आकार-प्रकार, उसके भीतर की वृत्ति को प्राय: प्रकट करने वाला बनता है। मनुष्य की आकृति जिस रूप में आज दृष्टिगत हो रही है उस आकृति का ज्ञाता जिसने मनुष्य जीवन का विज्ञान पढा है, मनुष्य जीवन सम्बन्धी समस्त प्रक्रियाओ को जाना है तो वही पुरुष अपने अन्तरग जीवन को व्यवस्थित कर सकता है।

□□

६६. अमूल्य मानव तन

परन्तु जिनका ध्यान, जिनके विचार मनुष्य शरीर के भीतरी तत्त्वो की तरफ नही हैं और बाहरी पदार्थों को जानने मे ही सारी शक्ति लगाते हैं, वे मानव की पहचान सही रूप मे नही कर पाते हैं और जहा मानव की पहचान नही होती, वहां मानव के साथ क्या व्यवहार करना चाहिये, इसका भी विज्ञान नही होता। वे बाहरी दृश्यो को ही लेकर चलते है और वर्तमान जीवन के बहुत मूल्यवान क्षण, जीवन की बहुमूल्य थाती, बहुमूल्य उपलब्धि वैसे ही गँवा देते हैं। जिस प्रकार एक गवार चिन्तामणि रत्न को बिना पहचाने पत्थर समझ कर फेंक देता है। चिन्तामणि रत्न की पहचान जौहरी ही कर सकता है। रत्न तो मूल्यवान ही है, परन्तु एक दृष्टि से देखा जाय तो मानव तन मूल्यवान ही नही, अमूल्य है। इसका एक-एक अवयव भी कही सहज मे उपलब्ध नही होता। इतने बडे शहर मे यदि कोई बाहर का व्यापारी आकर जीवित मनुष्य के दो नेत्र मागना चाहे और कहे कि मुझे दो नेत्र चाहिये और एक-एक नेत्र के दस-दस लाख रुपये देने को तैयार हो, तो कहिये, नेत्र देने वाले कितने व्यक्ति मिल जायेंगे ? क्या कुछ आप कह सकते हैं ? नजदीक से तो आवाज आई कि एक भी नही मिल पाएगा। क्यों ? मनुष्य के नेत्रो की दस लाख से भी अधिक कीमत है। और अधिक देने को तैयार हो जाय, तब तो मिल जायेंगें ?' नही मिलेंगे।

एक दूसरा व्यापारी कदाचित पहुँचा और वह चाहे कि मनुष्य की जिह्वा (जबान) जिससे वह बोलता है, चखता है, वह तालवे से लेकर सारी चाहिये और उसके लिये भी वह बीस लाख रुपये देने को तैयार है तो कोई देने वाला मिलेगा ? नही। इतने में तीसरा व्यापारी आया और वह चाहे कि आजकल कई व्यक्तियो के हार्ट कमजोर हो गये हैं, उनके लिये हार्ट चाहिये। यदि कोई जिन्दा मनुष्य हार्ट देता है तो दस अरब रुपये देने को तैयार है। क्या मिल सकेगा हार्ट देने वाला ? नही। तो अब कल्पना कीजिये। मानव जिसकी उपलब्धि को लेकर चल रहा है, उसका मूल्याकन करिये। इन अवयवो की इतनी-इतनी धन राशि देने पर भी उन्हे देने वाला नही मिल सकता तो आज के मानव का मूल्याकन किस रूप में किया जाये। ऐसे अमूल्य मानव जीवन से अनन्त शक्तियो को जागृत करने का पुरुषार्थ करना चाहिये।

६७. गरीब कौन ?

कई भाई अपने अन्दर हीन भावो को लेकर चल रहे है कि हम गरीब हैं, हम कमजोर हैं, हमारे पास सम्पत्ति नही है और अमुक के पास धन है। मैं सोचता हूँ कि यह भावना कहाँ से प्रवेश कर गई ? शरीर से भिन्न तत्त्वो का वह मूल्याकन कर रहा है। चन्द चाँदी के टुकडो को वह महत्त्व दे रहा है और उसके पीछे बहुमूल्य जिन्दगी का अवमूल्यन कर रहा है। क्या यही इस मानव तन मे रहने वाली आत्मा का विज्ञान है। हर आत्मा को विवेक की आवश्यकता है। इस अमूल्य जीवन का यदि मानवता के धरातल पर सदुपयोग किया जाय और आध्यात्मिक धरातल पर अन्तर शक्ति का समीक्षण किया जाय तो यह बाहरी सम्पत्ति, वैभव उसके चरणो मे लोट-पोट हो जायेगा। वह ठोकर मारेगा तो भी उसके साथ पड़ेगा। स्वर्ग का राजा इन्द्र भी नतमस्तक हो जायेगा। विश्व का वैभव एक तरफ, विश्व की सारी सम्पत्ति एक पलडे मे रख दी जाय और इधर मानव जीवन का मूल्य, मानव जीवन की गरिमा दूसरे पलडे मे रखदी जाये, तब भी इसकी तुलना नही की जा सकती। इतना बहुमूल्य जीवन अन्य प्राणियो को उपलब्ध नही हुआ है। पशु योनि मे रहने वाले वे पशु, उनमे भी आत्मा है। परन्तु विवेक-ज्ञान नही। स्वर्ग की आत्मा शारीरिक दृष्टि से सौन्दर्य से असाधारण है। परन्तु जो क्षमता मानव तन मे है वह उनमे नही है। नरक मे रहने वाली अनेक आत्माएँ इस मनुष्य तन का दुरुपयोग करके दण्ड भोग रही हैं, सजा भोग रही है। वहाँ भी उनके विकास का प्रसग नही है। अत· अनन्त शक्ति की अभिव्यक्ति का मूल स्रोत यह मानव जीवन ही है। ऐसे जीवन मे वाह्य तत्त्वो को महत्त्व देकर मन मे हीन भावना नही लाना चाहिये।

□□

६८. चकडोलर और संसार

ससार 'चकडोलर' के समान विभक्त है । 'चकडोलर' मे चार चार पालखियाँ होती हैं, एक ऊपर, एक नीचे और दो मध्य मे— आमने सामने । संसार मे भी चार गतियाँ हैं—नरक गति नीचे है, देव गति ऊपर है, तिर्यंच और मनुष्य गति मध्य मे है । यह विश्लेषण वहुलाश की अपेक्षा से किया गया है । इन चार गति रूप ससार मे अनन्तानन्त आत्माएँ परिभ्रमण कर रही हैं । आत्मा का परम उत्कर्ष और मुक्ति की अवाप्ति मात्र मनुष्य गति से ही हो सकती है, इसीलिए शास्त्रकारो ने दुर्लभता से प्राप्त होने वाले चार अगो मे से पहला अग मानव जीवन बतलाया है । भौतिक ऋद्धि-समृद्धि से तो मानव जीवन से भी देव जीवन बहुत वड़ा है किन्तु देवता अध्यात्म में प्रवृत्ति नही कर पाते अर्थात् वे एक नवकारसी का तप भी नही कर सकते । मानव यद्यपि बाह्य वैभव से देवो की अपेक्षा अत्यल्प है, किन्तु अध्यात्म की प्रवृत्ति मे वह सबसे आगे है । साधना के क्षेत्र में वढकर वह एक के वाद एक सोपानो को पार करता हुआ चरम लक्ष्य का वरण कर सकता है । ऐसे ही दुर्लभ तन को प्राप्त कर जिनेश्वर भगवत, साधना के सोपानो पर अहर्निश वढते ही चले गये । अन्तत· लक्ष्य को प्राप्त कर ही लिया । आज भी उन्ही को आदर्श मानकर साधना के पथ पर वढने का प्रयास करें ।

□□

६९. गुणगान के साथ आचरण भी

किसी भी तीर्थंकर का गुण-गान करें, किन्तु जब तक उनके गुणो का प्रवेश जीवन मे नही होगा तब तक स्व का उत्थान नही हो सकता। किसी ने व्यापार करने का ढग सीख लिया—उसके गुर समझ लिये, इतने मात्र से उसे लाभ नही हो जाता। लाभ तो तब होता है, जब सीखे गये नियमो के अनुसार व्यापार मे प्रवृत्ति करता है। इन व्यावहारिक बातो का तो आपको बहुत अच्छा विज्ञान है। इन्हे समझने-समझाने की कोई आवश्यकता नही है। आपकी प्रज्ञा उस ओर तो बहुत तीव्रता से काम करती है। लेकिन उस प्रज्ञा का कुछ समीक्षण आप इधर भी करिये, इसी से जीवन का महत्त्व समझा जा सकेगा। तीर्थङ्कर भगवानो के गुणगान तक ही सीमित नही रहना है, अपितु उनके द्वारा निर्देशित मार्ग पर चलने का प्रयास करना है।

□□

७०. तीर्थंकर भी मानव हैं

जिन तीर्थंकर भगवतो का हम गुणगान करते है, वे भी तो मानव ही थे। इसी मानव तन मे रह कर ही उन्होनें सत्पुरुषार्थ के बल पर परम साध्यता को प्राप्त किया था। मानव-मानव की अपेक्षा उनमे और हमारे मे कोई अन्तर नही है। यही नही, जो पाच इन्द्रियाँ उनके थी, वही पाँच इन्द्रियाँ हमारे भी है। उनके तीन कान या चार आँखें नही थी। शरीर की मौलिक रचना मे भी कोई अन्तर नही था। इन सबकी समानता होते हुए भी, वे तो भगवान बन गये और हम अभी तक भक्त ही बने हुए है। उनकी क्रियावती शक्ति ने उनको उच्च स्थान पर पहुँचा दिया और हमारी क्रियावती शक्ति अभी तक भी हमको परमोन्नत अवस्था की ओर नही पहुँचा पाई है। अत भव्यात्माओ को तीर्थङ्कर भगवतो की तरह स्वात्म-जागरण हेतु भी निरन्तर सत्पुरुषार्थशील बनना चाहिये।

□□

७१. उदासीनता–निष्क्रियता नहीं है

उदासीनता से कई निष्क्रियता अर्थ भी ले लेते है, जो योग्य नही है। निष्क्रिय व्यक्ति कभी भी आत्मोत्थान नही कर सकता। आत्मोत्थान क्रियावती शक्ति से ही होता है। साधना के क्षेत्र मे उनकी निरन्तर प्रगति ही उनकी क्रियावती शक्ति की परिचायक है। सिद्धान्त की भाषा मे उट्ठाणे वा, कम्मे वा, बलेवा, वीरिए, पुरिसक्कार परक्कमे वा—अर्थात् आत्मा-उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार पराक्रम से सम्पन्न होती है। इन उत्थानादि के द्वारा ही भव्य साधक आगे बढता है। गुणस्थान का आरोहण भी इन्ही के द्वारा होता है। चवदहवे गुणस्थान मे भी इन उत्थानादि रूप क्रियावती शक्ति की प्रवृत्ति निरन्तर चलती रहती है।

तीर्थंकर राग-द्वेष रहित होने से उनकी सभी क्रियाएँ—उपदेश देना, विहार करना, उठना, बैठना, आहार ग्रहण आदि उदासीनतापूर्वक होती थी। ससार की सभी आत्माओं के पास क्रियावती शक्ति है किन्तु इससे उनकी आत्म-सिद्धि नही हो पा रही है। इसका कारण क्या है? गहराई मे उतरने पर आपको ज्ञात होगा कि आपकी क्रियावती शक्ति सही दिशा की ओर कार्य नही कर रही है। उसे योग्य दिशा की ओर नियोजित करना आवश्यक है।

□□

७२. सिद्धात्मा भी निष्क्रिय नहीं है

वहुत लोग क्रिया शब्द से केवल कायिक हलन-चलन होना, इतना ही अर्थ करते हैं। इन हलन-चलन मात्र को क्रिया मानने वालो की दृष्टि मे सिद्धात्मा निष्क्रिय वन जाती है। क्योकि सिद्ध वनने से पूर्व ही काय योग का निरोध हो जाता है। काय योग ही नही मन और वचन योग का निरोध भी हो जाता है। तीनो योगो मे से किसी भी योग का सूक्ष्मत: भी परिस्पन्दन अवशेष नही रहता। इसीलिये चौदहवें गुणस्थानवर्ती आत्मा को अयोगी केवली कहा है। अत. सिद्ध अवस्था मे तो मन-वचन-काय के होने का प्रश्न ही नही रहता। इतने मात्र से सिद्ध निष्क्रिय हो जाय और उनमे किसी भी प्रकार की क्रिया नही होती तो फिर कौन आत्मा होगी जो ऐसी सिद्ध अवस्था मे जाना चाहेगी।

जहाँ षड् दर्शनो मे एक वैशेषिक दर्शन भी आता है जो सख्या की दृष्टि से पाँचवें नम्वर पर है। उस दर्शन की मान्यता है कि आत्मा मोक्ष मे जाने के वाद विलकुल निष्क्रिय हो जाती है, उपल-खण्ड के समान हो जाती है। उसमे न सुख रहता है न दु.ख। वह दोनो ही अवस्थाओ से सर्वथा निरपेक्ष हो जाती है। उनकी इस अवधारणा पर किसी ने कहा है—

> वर वृन्दावने रम्ये, कोष्ट्रत्वमभिवांछितम्।
> न तु वैशेषिकी मुक्ति, गौतमो गन्तु-मिच्छति ।।

वृन्दावन के जगल मे गधा वन जाना अच्छा है किन्तु गौतम द्वारा प्रतिपादित वैशेपिक मुक्ति मे जाने की कभी भी इच्छा नही होती।

सुज्ञो ! यदि सिद्धो मे भी किसी भी प्रकार की क्रियावती शक्ति स्वीकार नही की जाएगी तो वह अवस्था करीव वैशेपिक दर्शन के अनुसार ही हो जाएगी। किन्तु जैन दर्शन में तो मुक्ति का

विलक्षरण रूप प्रतिपादित किया गया है। मुक्तिगत आत्मा अनन्त सुख से सम्पन्न हो जाती है। क्रिया शब्द से केवल हलन-चलन अर्थ लिया जाय तो इस दृष्टि से सिद्ध निष्क्रिय हैं, क्योकि वे अयोगी हैं किन्तु उनमे स्वात्म-रमरण क्रिया हर क्षरण, हर पल हो रही है। स्वात्मा मे ही अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन और अनन्त सुख के साथ ही अनन्त-अनन्त शक्तियो का निवास है। सिद्ध अपनी इस अनन्तता मे रमण करते रहते हैं। अत. आत्म रमण क्रियावती शक्ति की अपेक्षा सिद्धो को निष्क्रिय नहीं कहा जा सकता। जिस प्रकार शरीर की अपेक्षा से वर्णादिक नही होने से उन्हे अरूपी कहा जाता है, फिर भी आत्मा का मौलिक रूप तो उनमे होता ही है, उसी प्रकार शरीर सम्बन्धी क्रिया न होते हुए भी आत्म रमण रूप क्रिया तो सिद्धो मे भी होती ही है।

□□

७३. श्रावक तीर्थंकर नहीं बनते

उसी भव मे तीर्थंकर बनने वाली भव्य आत्मा, माता के गर्भ मे ही तीन ज्ञान से सम्पन्न होती है। मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधि ज्ञान। जब दीक्षा ग्रहण करती है—तब मन पर्याय ज्ञान और हो जाता है। सभी तीर्थंकर क्षायिक सम्यक्त्व से सम्पन्न होते हैं। तीर्थंकर चौथे गुणस्थान से सीधे सातवें गुणस्थान मे प्रवेश करते हैं। श्रावक व्रत ग्रहण करना थोडा कायरता का सूचक है, जो आत्मा साधु जीवन अगीकार नही कर पाती। जिसके साधु जीवन अगीकार करने की स्थिति नही होती, वह आत्मा श्रावकत्व अगीकार करती है। तीर्थंकर बनने वाली सभी आत्माएँ अनन्त सत्व से सम्पन्न होती हैं। अत: उनके कायरता का तो कोई प्रश्न ही नही रहता। एतदर्थ ऐसी आत्माएँ चतुर्थ गुणस्थान से सीधी सप्तम गुणस्थान मे प्रवेश करती हैं।

□□

७४. आप भी अनन्त सत्व सम्पन्न हैं

तीर्थंकर भगवन्तो की तरह हमारे भीतर भी अनन्त शक्ति का स्रोत है। उस स्रोत को खोलने के लिये 'उट्ठिए नो पमायए' उठिए, अब प्रमाद करने का अवसर नही है। इस दुर्लभ मानव जीवन के अमूल्य क्षण बीतते चले जा रहे हैं। जो भी क्षण बीत चुका है, लाख प्रयत्न करने पर भी वह नही आने वाला है।

'जा जा वच्चइ, रयणी न सा पडिनियत्तइ' जितने दिन और रात्रियाँ बीत चुकी हैं, उनमे से कोई भी पुन आने वाली नही है। आयुष्य के बीते हुए एक क्षण को भी ससार की कोई भी शक्ति वापस नही ला सकती। ऐसे अमूल्य क्षणो को व्यर्थ ही हाथ से मत जाने दीजिये। आपको चातुर्मास का भव्य प्रसग प्राप्त हुआ है। सत और सतियो का सान्निध्य भी मिल रहा है। जहाँ गांवो मे सत-सतियो को एक-एक दिन रखने के लिये भी लोग तरसते हैं, वहाँ आपको पूरा चातुर्मास—वह भी चार महीने का नही, अपितु पाँच मास का। इस दुर्लभ सयोग को यो मत जाने दीजिये। श्रावण, भादवा मास मे तो श्रावकगण वैसे ही धर्म-ध्यान का विशेष लाभ लेते है। सामायिक, प्रतिक्रमण, उपवास, पौषध, दया आदि जिसकी जिसमे रुचि हो, वह करना चाहिये। यह मानव जीवन मिला है। यदि कुछ किये बिना ही चले गये तो फिर बार-बार मिलने वाला नही है। अन्तत. पश्चात्ताप ही हाथ मे रह जाएगा।

□□

७५. कर्म पहले या आत्मा

कर्म की इस प्रकार की विचित्रता को देखकर सहज ही कुछ प्रश्न प्रस्फुटित हो उठते हैं कि अनन्त शक्ति सम्पन्न आत्माओ पर यह कर्म का सम्बन्ध कब से चला आ रहा है ? कर्म का पहले उद्भव हुआ या आत्मा का ? यदि कर्म का पहले उद्भव हुआ तो उसका आत्मा से सम्बन्ध क्यो हुआ क्योकि आत्मा उस समय विशुद्ध रूप मे थी । यदि विशुद्ध अवस्था मे भी कर्म का सम्बन्ध हुआ माना जाय तो फिर सिद्धों में भी क्यो नही होता ? ऐसे अनेक प्रश्नो की लम्बी कतार कभी-कभी सामान्य मानव को झंकृत कर देती है । मैं अभी उन गम्भीर विषयो की विशद चर्चा मे न उतर कर आपको एक शास्त्रीय रूपक से उनका समाधान कर देता हूँ ।

भगवती सूत्र मे प्रथम शतक के छठे उद्देशक मे रोहा अणगार के प्रश्नो का वर्णन आता है । रोहा अणगार ने भगवान् महावीर से अनेक प्रश्न पूछे थे, उनमे से एक प्रश्न यह भी था—

पुव्विं भंते जीवा पच्छा अजीवा, पुव्वि अजीवा पच्छा जीवा ?

रोहा : जीवा य अजीवा य पुव्वि पेते, पच्छापेते दोविए सासया भावा, अणाणुपुव्वी ?

पुव्वि भते : अडए पच्छा कुक्कुडी ? पुव्वि कुक्कुडी पच्छा अंडए ?

रोहा : से ण अंडएकओ ?

भयवं कुक्कुडी कओ ?

साणं कुक्कुडीओ ।

साण कुक्कुडी कओ ?

भंते अडयाओ

एवामेव रोहा से य अडए साय कुक्कुडी पुठिव पेते पच्छापेते दो वि एएसासया भावा, अणाणुपुव्वी एसा रोहा ।

अर्थ—रोहा अणगार ने पूछा—भगवन् : पहले जीव है, बाद मे अजीव है या पहले अजीव है और बाद मे जीव है ?

समाधीत किया प्रभु ने रोहा अणगार के प्रश्न को—रोहा : जीवाजीव मे आनुपूर्वी भाव नही है। जीव, अजीव पहले भी हैं, पीछे भी। ये दोनो शाश्वत भाव रूप हैं।

रोहा अणगार ने जिज्ञासा का स्पष्ट समाधान पाने के लिये एक व्यावहारिक प्रश्न किया—भगवन् अंडा पहले है या कुक्कुटी ? कुक्कुटी पहले है या अडा ?

भगवान् ने प्रतिप्रश्न किया–रोहा, वह अडा कहाँ से आया ?

रोहा अणगार—भगवन् कुक्कुटी से।

भगवान्—रोहा : कुक्कुटी कहाँ से आयी ?

रोहा—भगवन् अडे से।

अत: हे रोहा : अडे और कुक्कुटी में पहले या बाद मे की स्थिति नही है। दोनो ही प्रवाह रूप से शाश्वत हैं।

भगवान् ने बहुत सहज रूप मे समाधान प्रस्तुत किया। जिस प्रकार अंडे एवं मुर्गी की उद्भूति के विषय में किसी को भी प्राथमिकता नही दी जा सकती। इन दोनो का सम्बन्ध अनादि-कालीन होते हुए भी इनके पारस्परिक सम्बन्ध को विच्छिन्न किया जा सकता है। उसी प्रकार आत्मा और कर्म का सम्बन्ध अनादि-कालीन है। इस प्रकार की अनादिता के होते हुए भी इनका पारस्परिक सम्बन्ध विनष्ट हो सकता है। शाश्वत तत्त्वो में समूलतः उत्पादन-विनाश नही होता। चैतन्य तत्त्व शाश्वत है। अतः इसको उत्पत्ति का तो कोई प्रश्न ही नही है। जब चेतना की उत्पत्ति ही नही होती तो उसका अवसान भी नही हो सकता।

□□

७६. धन लोलुपी

आज का धन लोलुपी व्यक्ति किस प्रकार से हिंसा, झूठ, चोरी आदि पापो का सेवन करता हुआ धन एकत्रित कर रहा है। धनार्जन की यह वृत्ति मानव से क्या-क्या अनीति और कुकृत्य करा डालती है, मुझे इसका स्पष्टीकरण करने की आवश्यकता नही है। इस विषय मे तो आप लोगो की बुद्धि बहुत ही पैनी एव तीक्ष्ण बन रही है, जहाँ सरकारी असेम्वलियों, विधान सभा मे कोई अनीति न होने पाये, इसके लिए नियम बनाये जाते हैं वहाँ आज का व्यापारी, अफसर या कोई भी धन लोलुपी व्यक्ति उन नियमो से कैसे बचा जाय और किस प्रकार धन एकत्रित किया जाय, इसके लिए अनेक गलिये निकाल लेता है। आज सरकार ने किस प्रकार से नियमो का प्राकार बना रखा है, वह आपसे छिपा हुआ नही है। फिर भी मानव दो नम्बर के रास्तो से धन की अतृप्त लालसा को पूरी करने में जुटा हुआ है।

सुज्ञ आत्माओ ! यह सब प्रेय मार्ग है। ऐसे मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति अपनी आत्मा को कर्मों से भारी वनाता है और चतुर्गति ससार मे भटकता रहता है।

□□

७७. आत्मा का हल्कापन

आत्मा का मौलिक स्वभाव हल्कापन है। जिस प्रकार मोटे रूप से रुई हल्की और लोहा भारी लगता है। रुई ऊपर उठने लगती और लोहा नीचे गिरने लगता है। इसी प्रकार आत्मा ज्यो-ज्यों कर्मों से हल्की होती जाती है, त्यो-त्यों ऊपर उठने लगती है, क्योंकि उसका चरम लक्ष्य ऊपर की ओर है। किन्तु जब कर्मों से भारी होती जाती है, त्यो-त्यो वह पतन की ओर बढने लगती है। आत्मा के ऊपर उठने का स्वभाव ही उसके हल्केपन का परिचायक है। किन्तु कर्मों का भारीपन उसे ससार मे रुलाता है। आत्मा को ऊपर की ओर ले जाने के लिए श्रेय मार्ग पर चलना होगा। आत्मा का समीक्षण करना होगा। श्रेय मार्ग द्वारा ही आत्मा हल्केपन को प्राप्त करती है। श्रेय मार्ग को ही अट्ठारह पापो की निवृत्ति के रूप मे प्रतिपादित किया है।

जो व्यक्ति 'आत्मन: प्रतिकूलानि परेषायं न समाचरेत्'।

अपनी आत्मा के प्रतिकूल लगने वाला आचरण दूसरो के लिए नही करता है, सभी आत्माओ के प्रति आत्मीय भाव रखता है, व्यावसायी कार्यों मे भी कम से कम हिंसा, झूठ, चोरी आदि हो, इस विषय मे सतर्कता रखता है। क्रोधादिक कषायो को दूर हटाने के लिए प्रयत्न करता है। ऐसा व्यक्ति श्रेय मार्ग पर चलता हुआ अपनी आत्मा को हल्की बनाता है, वह हल्कापन बढते-बढते जिस दिन परिपूर्ण हल्केपन की स्थिति मे परिणित हो जाता है अर्थात् जब उसकी आत्मा सम्पूर्ण कर्मो से विलग हो जाती है, तब वह परम सुख के स्थान को पा लेता है।

□□

७८. जीव और पुद्गल

यह आत्मा अनादि काल से जड़ पुद्गलो से सम्बद्ध बनी हुई है, जन्म-जन्मान्तरो से कर्म पुद्गलों से जकड़ी हुई होने के कारण उसे निज स्वरूप का भान नही हो रहा है। निज स्वरूप का बोध प्राप्त करने के लिए यह सुन्दर अवसर प्राप्त हुआ है। मनुष्य जीवन मे ही स्व का परिपूर्ण समीक्षण किया जा सकता है। चार गति मे यही एक ऐसी गति है जिससे आत्मा निज का समीक्षण करके लक्ष्य के चरम छोर पर जा सकती है। मनुष्य कितना ही वैभव पा जाय, ससार की समृद्धि भी प्राप्त कर ले, मानुषिक काम भोगो को भी विपुल मात्रा मे प्राप्त कर ले, किन्तु उनसे उसे कभी भी आत्म समीक्षण नही होने वाला है। वर्तमान युग के अधिकाश मानव सासारिक सुख-सम्पत्ति के पीछे स्व को भूलते जा रहे है। उनकी प्रत्येक गतिविधि भौतिक पुद्गलो को प्राप्त करने मे ही लगी हुई है। लेकिन उन तत्त्वो से वे आज तक सुख-शान्ति को प्राप्त नही कर पाये हैं। क्योकि उन भौतिक तत्त्वो मे वास्तविक सुख का अश भी विद्यमान नही है। इतना होने पर भी मानव का भौतिक पुद्गलो की ओर आकर्षित होने का यह कारण है कि जन्म-जन्मान्तर से उसकी आत्मा उन्ही पुद्गलो से सम्बद्ध रही है। जो व्यक्ति गन्दगी मे रहने के अभ्यासी हो जाते हैं, तो उन्हें कितना भी सुगन्ध मे ले जाने का प्रयास किया जाय तथापि वे गन्दगी मे जाना ही पसन्द करते हैं। बहुत दुर्लभ व्यक्ति होते हैं जो गन्दगी से हटकर सुगन्ध मे आ पाते है। ठीक इसी प्रकार यह आत्मा भी अनादि काल से वैभाविक तत्त्वो की ओर आसक्त हो रही है, अत. अब भी उसे वैभाविक तत्त्व ही अच्छे लगते है, वह उन्हे पाने के लिए दौडती है। बहुत कम आत्मायें ऐसी होती हैं, जो वैभाविक तत्त्वों से हटकर स्वाभाविक आत्म-स्वरूप की ओर आकर्षित बनती हैं।

□□

७९. लक्ष्य सम्यक्दृष्टि आत्मा का

जब से आत्मा सम्यक्दृष्टित्व अवस्था को प्राप्त कर लेती है, तव से उसका लक्ष्य निज-स्वरूप को साधने का वन जाता है, सम्यक्-दृष्टि आत्मा जड-चैतन्य के स्वरूप को समझने लगती है। पुद्‌गल मेरा साध्य नही है, आत्मा पुद्‌गलो से प्रतिवधित है। मेरा लक्ष्य आत्मा को वैभाविक तत्त्वो से हटाकर शुद्ध स्वरूप मे ले जाना है। इस प्रकार आत्मिक बोध के साथ सम्यक्दृष्टि आत्मा विकास के मार्ग पर वढने लगती है। एक दृष्टि से विचार किया जाय तो सम्यक्त्व अवस्था आत्म विकास का प्रथम चरण है। जब तक लक्ष्यानुरूप गति नही होती, तव तक आत्मा अभीष्ट अर्थ सिद्ध नहीं कर सकती। सम्यक् अस्वथा निज स्वरूप को विज्ञान कराने का प्राथमिक प्रयास है। सम्यक् वोध पा लेने पर आत्मा के विकास क्रम का सही लक्ष्य बन जाता है। सम्यक्दृष्टि आत्मा निश्चित रूप से एक न एक दिन मुक्त अवस्था को प्राप्त कर लेती है।

सम्यक्दृष्टि आत्मा के परिपूर्ण विकास क्रम मे मानव देह वहुत सहायक वनता है, मानव तन मे रहकर आत्मा परिपूर्ण विकास की दिशा मे गतिशील वन सकती है। सिद्ध स्वरूप मे रमण करने वालो आत्माओ ने सिद्धावस्था की प्राप्ति इस मानव तन से ही की थी। यह शाश्वत सत्य है कि निज स्वरूप मे परिपूर्ण निखार मानव तन मे ही होता है।

प्रत्येक मुमुक्षु आत्मा को परिपूर्ण विकास की प्राथमिक भूमिका-सम्यक्त्व की प्राप्ति होना आवश्यक है। मानव देह से जहाँ सम्यक्दृष्टि आत्मा आत्मदीप जगा सकती है, तो उसी मानव देह से आत्मा पतन की ओर भी जा सकती है। भव्य आत्माओ को उन्नति का सम्यक् वोध प्राप्त कर प्रवृत्ति की दिशा मे वढना चाहिए।

□□

८०. खिलौने आत्मा के

बच्चा बचपन की अवस्था मे खेलना पसन्द करता है। वह खिलौनों से खेलता है। परन्तु बच्चे की वह खिलोने से खेलने की आदत, ज्ञान के अभाव में मनोविनोद की आदत है। जैसे बच्चे की आदत मिट्टी के खिलौने से खेलने की है, वैसे ही इस आत्मा की आदत भी बच्चे के तुल्य बनी हुई है। बच्चा वह रग-बिरगे मिट्टी के बनाए हुए खिलौनों से खेलता है। आप जरा गम्भीरता से चिन्तन कीजिए, बडे-बडे बगले किसने बनाए ? फर्नीचर का सामान किसने सजवाया ? ताश, चौपड किसने बनवाए ? ताश, चौपड स्वय मे तो नही समझते हैं कि हम ताश, चौपड हैं, परन्तु ताश, चौपड को बनाने वाली आत्मा है, और खेलने वाली भी आत्मा है, और उन्ही से वह खेलती है, मनोविनोद करती है। सिनेमाघर (टॉकीज) किसने बनवाए, और फिल्म किसने बनाई ? वही इसमे आत्मा जाकर बैठती है, दुकान पर जाकर बैठती है, तो यह खिलौनो का व्यापार करती है। मिट्टी से आप सब तरह की मिट्टी ले सकते हैं, इसमे सख्त और कोमल भी है। सोना, चाँदी ये भी मिट्टी के सख्त रूप हैं। सोना-चाँदी गए तो नोट आए, ये भी तो उसी तत्त्व के बने हुए हैं। अधिकांश तत्त्व इसी मिट्टी के बने हुए हैं।

जो दृश्य पदार्थ हैं—नजर आ रहे हैं वे भी अधिकाश रूप से मिट्टी पुद्गल से बने हैं और यह आत्मा उन्ही खिलौनो से खेल रही है, और इनमे ही आनन्द मानती है। क्या कभी इन खिलौनों से विराम लेने की मन मे आती है ? कभी इन खिलौनो से खेलने की अनिच्छा भी होती है ? यह वह दिन दूनी रात चौगुनी बढती ही रहती है ? छोटे बच्चे तो उनको जल्दी छोड़कर दूसरी तरफ आ जाते हैं, परन्तु ये बड़े-बड़े इनको बच्चे कहूँ या क्या ? जो इन पदार्थों मे रमण करते हैं, अपने को भूल जाते हैं तो वे बच्चे ही हैं। उन्होंने अपने आपका घेरा बना रखा है। उसी चार दीवारी मे इनका घूमना होता है। उसी में आनन्द लेते हैं। रात और दिन मस्तिष्क मे एक ही चक्कर घूमता रहता है। कैसे धन पैदा किया जाय ? यश-कीर्ति पैदा की जाय, लेकिन वे यह नही सोच पाते कि ये सब वैभाविक परिणाम यथार्थ में शाति प्रदायक नही हैं।

□□

८१. शैवालाच्छादित मेंढक : कर्माच्छादित आत्मा

एक बावडी पानी से लबालब भरी हुई थी, जब पानी काम मे नही आता था तो उस पर काजी, शैवाल का इतना स्तर जम जाता है कि पानी नही दिखता है। उसी बावडी मे कछुआ और उसके परिवार के सदस्य रहते थे। सयोगवश ऐसी आधी चली कि थोडी शैवाल हट गई, और वहाँ पर एक कछुआ बैठा हुआ था, उसकी दृष्टि आकाश की तरफ गई कि अजीब है। यह क्या ? पूर्णिमा की चादनी छिटक रही है, चाँद प्रकाश दे रहा था, और तारे टिमटिमा रहे थे। विशाल आकाश को देखकर उसे आश्चर्य हुआ, और सोचा कि मै ऐसा दृश्य परिवार वालो को भी दिखा दू। वह बुलाने के लिए गया—परिवार के सदस्यो को, और इधर सयोगवश दूसरा आँधी का झोका आया और शैवाल से छिद्र पुन. भर गया। कछुआ लाया परिवार के सदस्यो को, लेकिन वह आकाश नही दिखा सका। तब दूसरे ने कहा कि इस काई और बावडी से बढकर दुनिया मे कुछ नही है। वह कहता है कि मैने अभी-अभी इतना बडा आकाश देखा, चन्द्रमा देखा एव चन्द्रमा की चाँदनी देखी, तारे देखे जिनका वर्णन नही कर सकता हूँ, तो वे सब कहने लगे कि बताओ। वह हैरान है, परन्तु वह इस दृश्य को भूल नही सकता है। वसे ही इस मनुष्य जन्म में रहने वाली आत्मा पर पदार्थो से वास्ता रखे हुए है और अपने निज स्वरूप को नही पहचान पा रही है। कारण, आत्मा के ऊपर मोह कर्म की शैवाल छाई हुई है। यह इस कदर आत्मा पर छाई हुई है कि छिद्र नही मिलता है। कभी-कभी उपदेश सुनते हैं, धर्म करनी करते हैं, नियमित रूप से चिन्तन-मनन करते हैं। ध्यान और स्वाध्याय करते हैं तो उन बादलो की तरह मोह कर्म का कुछ छिद्र हट जाय, तो जो उसको आनन्द प्राप्त होगा वह नही भूला जा सकता है। वह भले ही कोई भी काम करेगा, परन्तु उसमे रमेगा नही।

□□

८२. शान्ति की दुर्लभता

आज विश्व मे भौतिक विज्ञान का विस्तार हो रहा है। नित्य नवीन-नवीन भौतिक सुख सुविधाओ के साधन उपलब्ध हो रहे हैं। यातायात के साधन इतने तीव्रगामी और दूरगामी हैं कि दुनिया की दूरी, दूर होती जा रही है, वह सिमटती जा रही है। विश्व के एक छोर से दूसरे छोर पर अल्प समय में ही पहुँचा जा सकता है। दूर-दूर के शब्दो का आदान-प्रदान कुछ ही क्षणो मे हो सकता है। ये सब उपलब्धियाँ भौतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं परन्तु इन सब के बावजूद शान्ति सुलभ नही हुई है। ज्यो-ज्यो सुख-सुविधा के भौतिक साधन उपलब्ध होते जा रहे हैं, त्यो-त्यो शान्ति विलुप्त होती जा रही है। साधनो की वृद्धि के साथ-साथ अशान्ति की वृद्धि होती जा रही है। दुनिया की दूरी मिटने के साथ-ही-साथ दिलो की दूरी बढती चली जा रही है। इसका अर्थ यह है कि भौतिक साधनो की अभिवृद्धि शान्ति की विधि नही है।

आप और हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि जिनके पास भौतिक साधनों की जितनी अधिक विपुलता है, वे उतने ही अधिक अशान्ति की आग से जल रहे हैं। तो स्पष्ट ही यह ज्ञान होना चाहिए कि शान्ति का यह मार्ग नही है जिस पर न केवल दुनिया चल रही है, अपितु दौड़ रही है। शान्ति का कोई दूसरा ही रास्ता है। जब यह प्रतीत हो जाय कि शान्ति की मजिल पर पहुँचने के लिए हमने जो मार्ग अपनाया है, वह गलत है तो समझदारी और विवेक का तकाजा है कि हम उस मार्ग को तत्काल छोड़ दें और सही मार्ग की खोज करें, अन्यथा हम शान्ति की मजिल तक कभी नही पहुँच पाएँगे। भौतिक साधनो को जुटाकर देख लिया कि इनमे कही शान्ति का नामोनिशान नही है अपितु ये तो शान्ति को चौपट करने वाले हैं। तो अपनी गलत दिशा को छोड दीजिये और सही दिशा की ओर मुड़ जाइये। वह सही दिशा है—समता और समीक्षण।

समता द्वारा जीवन मे समभावता का, समीक्षण द्वारा आत्मा से परमात्मा की दूरी तय की जाती है। आवश्यकता है इन्हे समझने की।

□□

८३. अन्तःसमीक्षण

आप सब शान्ति पाना चाहते हैं। शान्ति के साधन जुटाना चाहते हैं। बाह्य साधनो को जुटाने के प्रयास मे इतना समय निकल गया, आयु का बहुत-सा भाग चला गया किन्तु शान्ति के दर्शन हुए क्या ? शान्ति की एक किरण भी प्रस्फुटित हुई हो तो बताइये, तो आइये, बाहर से दृष्टि हटाइये और अन्त प्रवेश करिये।

जिन आत्माओ ने अपने अन्तर स्वरूप को समझा है, उन्होने ससार को समग्र रूप से जाना है, जिनसे विश्व का कोई भी अश छिपा हुआ नही रहा है। अन्त समीक्षण शान्ति का सदेश-वाहक है, विश्व के आगन मे समता का विस्तारक है, सुख का सचारक है, पाप के ताप का निवारक है, भवोदधितारक है और जग जीवो का उद्धारक है। कषाय की आग को शान्त करने के लिए यह पानी है, वैर-विरोध की गर्मी को प्रशान्त करने हेतु यह मेघ की धारा है, मन की मलिनता को धोने के लिए यह गगाजल है, विषयो के विष-विकारो को हटाने के लिए यह अमृत है, मोहान्धकार को मिटाने के लिए यह सूर्य है, आध्यात्मिक दीनता को दूर करने के लिए चिन्तामणि है और मुक्ति रूपी फल के लिए कल्पवृक्ष है।

□□

८४. पाश्चात्य संस्कृति—भारतीय संस्कृति

आज भारतवासियो की दृष्टि भी पाश्चात्य जगत् की तरफ लगी हुई है। वे सोचते हैं कि अमेरिका वाले बहुत आनन्द मे होंगे, क्योकि उनके पास बहुत पैसा है। परन्तु पूछिए उन्हे कि आप कितने आनन्द मे हैं ? सुख-शाति मे तो हैं ? बड़ी हवेलियो मे रहने वाले से भी पूछिए कि आपको सुख है या दुःख ? वे अपनी सारी शक्ति लगाकर मृग तृष्णा की तरफ भाग रहे हैं। वे नही सोचते हैं कि यह जीवन क्यो है और क्या है ? यद्यपि इन पदार्थों का सर्वथा निषेध नही किया जा सकता है, परन्तु इनसे ही आनन्द मान लेना और इनसे ही चिपक जाना, अज्ञान की दशा है। इसी से आत्मा के आनन्द की शक्ति दब रही है और उसका ह्रास हो रहा है। आज के मानव को सोचना चाहिए कि मैं पूरी शक्ति लगाकर इन पदार्थों को बटोर रहा हूँ। परन्तु इनके साथ मेरा सच्चा सम्बन्ध नही है। ये स्थायी नही है। दुनिया चाहे जिधर भी दौड़ रही हो, परन्तु क्या हम भी उधर ही भागते जाएँ ?

दुनिया में जिधर भी जाइए, उधर यही रट लग रही है—हाय पैसा, हाय पैसा, हाय धन। यदि धन मिल भी गया तो वह कितने दिन तक टिकेगा ? उससे आनन्द की कितनी अनुभूति होगी ? इसका चिन्तन करना चाहिए। आज तक संसार का कोई भी व्यक्ति धन से सच्चा सुख प्राप्त नही कर पाया है। अतः पाश्चात्य सस्कृति से हटकर भारतीय सस्कृति को अपनाना चाहिए।

□□

८५. पेटी के लोभ से अमानवीयता

भूख पेट की नही, परन्तु पेटी की है। उसके लिए इन्सान अपनी शक्ति को कहाँ लगा रहा है और कहाँ-कहाँ भागता फिर रहा है ? यह पेटी की तृष्णा जल्दी से पूरी नही होती है। मनुष्य इसमे आनन्द का अनुभव करना चाहता है, इसलिए वह नैतिकता और अनैतिकता कुछ नही देखता है। जैसे कोई व्यक्ति सोचता है कि ईमानदारी से व्यापार करूँगा तो थोडे से पैसे पैदा होगे। अत· इसमे चालाकी की जाए ताकि ज्यादा पैसा मिल सके और वह वस्तु में मिलावट करना चालू कर देता है। ग्राहक की आँखो मे धूल डालने के लिए असली घी मे डालडा या अमुक जाति का तेल डालने की कोशिश करता है। इस मिलावट की दृष्टि से व्यापारी अपनी आत्मा को कितनी मैली कर रहा है ?

वह सोच भी नही पा रहा है कि उसका जीवन मानवीय धरातल पर है या अमानवीय धरातल पर ? वह जीवन राक्षस का है या मनुष्य का ? यदि आप इसे गहराई से सोचेंगे तो प्रकट होगा कि जो व्यक्ति मिलावट करता है, वह अत्यन्त क्रूर और निर्दयी बन रहा है। व्यक्ति पैसे का गुलाम बनता है, तभी वस्तु मे मिलावट करता है। जिसके साथ जिस पदार्थ का मेल नही है, यदि वह उसमे मिला दिया जाता है तो इस सयोग से जो पदार्थ बनता है, वह जहरीला बन जाता है। इस सयोग से न मालूम मानव जीवन को कितनी क्षति पहुँच रही है ? इसका उसको ध्यान नही है। इस तरह से जो वस्तुओ मे मिलावट करता है, वह चाहे किसी प्रलोभन मे आकर ऐसा करता हो, परन्तु ऐसा करके वह मनुष्यो के लिए जहरीला काम करता है, जो कार्य उसे मानवता से हटाकर निम्न स्तर पर पहुँचा देता है।

□□

८६. मानवीय शक्ति

मानव बहुत बड़ी शक्ति को सचित करके बैठा हुआ है। वह बहुत बडी निधि को लेकर चल रहा है। वह बहुत बडे चिन्तामणि रत्न को पास मे रखकर सो रहा है। परन्तु उस चिन्तामणि रत्न का उसे कुछ ज्ञान नही है। उसे उस पवित्र शक्ति का ध्यान नही है। ऐसी दशा मे ज्ञानीजन अनन्त करुणा की दृष्टि से अपने कर्तव्य का वहन करने की भावना से भव्य प्राणियों को जगाने की कोशिश करते हैं।

मानव को जागने की आवश्यकता है। वह चिन्तन करे कि ऐसी शक्तियो का पुज और चिन्तामणि रत्न, जो वाछित इच्छापूर्ति करनेवाला तत्त्व है, मेरे पास है तो मे दरिद्री कैसे हूं? मैं क्यो अपनी आत्मा के अन्दर हीन भावना को पा रहा हू? रात और दिन मेरे चेहरे पर उदासी छाई रहती है, मैं चिन्ता ही चिन्ता करता रहता हू कि क्या करू, मेरे पास अमुक चीज नही है, मैं अमुक कष्ट से ग्रसित हो गया, मेरे ऊपर अमुक विपत्ति आ गई, अमुक समस्या आ गई तो उसकी पूर्ति कैसे की जाए, अब कैसे क्या होगा? इस प्रकार की धारणा मस्तिष्क मे लाकर यह आत्मा अपने आपको हीन भावना मे वहा रही है। इस हीन भावना का दुष्परिणाम यह है कि इन्सान की प्रफुल्लित बनने की शक्ति का विकास नही हो रहा है, उसकी पवित्र शक्ति का जागरण नही हो रहा है। अत· मानव अपनी शक्ति को जगाने के लिये सत्-पुरुषार्थशील जीवन बनाए।

• •

८७. कंकर और गेहूँ

एक मनुष्य ने बहुत बडी गेहूँ की राशि देखी, जिसमें बहुत अधिक ककर मिले हुए थे। फिर उसने यह विचार किया कि इस गेहूँ के साथ बहुत ककर हैं और यदि ये कंकर के साथ खाए गए तो मेरे जीवन के लिए घातक बनेंगे। मैं इन ककरो को बीन लूं तो शुद्ध गेहूँ मेरे जीवन के लिए हितावह हो सकते हैं। इस भावना से यदि वह गेहूँ को देखना चालू करे और उसमे रहने वाले कंकरो को चुनना चालू करे तो आहिस्ता-आहिस्ता वह उस गेहूँ की राशि को ककरो से रहित कर सकता है परन्तु यदि कोई चाहे कि गेहूँ की राशि को मैं एक साथ ही ककरो से रहित कर दूं तो यह शक्य नही है।

इस जीवन की भव्य राशि मे कंकरो के समान जो हीन भावनाओ का सचय है, मलिन तत्त्वो की उपस्थिति है, यदि उनको चुनने का कोई अभ्यास बना ले तो वह प्रतिदिन अपने गुणों मे वृद्धि करता हुआ अपने जीवन मे पुण्यशील बन सकता है।

• •

८८. कोई छाया का अनुसरण न करे

सूर्योदय के समय मनुष्य सूर्य की तरफ पीठ करके पश्चिम की तरफ मुँह करता है तो उसे अपनी छाया लम्बी दिखाई देती है। वह छाया को देखता हुआ सोचता है कि मैं बहुत बडा हूँ। मैं हाथ ऊँचे करूं तो और भी बड़ा हो सकता हूँ। वह अपने हाथ को ऊँचा करता है, हाथ लम्बे दिखलाई देते हैं। वह झुकता है तो छाया भी झुकती है, वह टेढा होता है तो छाया भी टेढी होती है, वह मुँह फेरता है तो छाया भी मुँह फेरती है। इस प्रकार छाया मनुष्य के आधीन है, छाया के अनुरूप मनुष्य नही है, मनुष्य के अनुरूप छाया है। यदि इन्सान उस छाया को विशेष महत्त्व न देकर अपने जीवन को महत्त्व दे तो वह अपनी छाया को इच्छानुसार मोड सकता है। यदि जीवन को मोड़ करके छाया को पकडने दौड़ता है, जिधर छाया है उधर पकड़ने को दौडता है, तो क्या छाया को पकड सकता है? वह कितना भी दौड़े परन्तु छाया पकड़ मे नही आ सकती। वैसे ही इन्सान का पूर्वकृत भाग्य, उसके हथेली की रेखाएँ और शारीरिक चिह्न ये सब छाया के तुल्य हैं, यदि वह अपनी शक्ति को मोडता है तो उसके भाग्य मे भी मोड आ जाता है। इन्सान अपनी शक्ति को कुबड़ा करेगा तो उसमे भी कुबडापन आ जाएगा। यदि व्यक्ति यह सोच ले कि यह रेखाएँ कुछ नही, ये तो छाया के तुल्य हैं, मैं इन्हें मोड़ सकता हूँ तो इन्सान अपनी जीवन शक्ति को सभाल लेगा। परन्तु मनुष्य के मन मे यह उदात्त भावना, यह शक्ति योग्य व्यक्तियो के सम्पर्क से ही आ सकती है। यदि उनका सम्पर्क निरन्तर चलता रहा और उनके पद चिह्नो पर चला जाय तो इन्सान बहुत बड़ी शक्ति पाकर, आश्चर्यजनक कार्य कर सकता है।

◆ ◆

८६. मन-चंचलता में हेतु

यह पचम काल है, इसके अन्दर अनेक प्रकार की विचित्र परिस्थितिया मानव मन को शांत न रखते हुए उसकी चचलता को दिन प्रतिदिन वढा रही हैं। ऐसी मानसिक दशा मे प्रभु के स्वरूप का चिंतन अति कठिन है। वह स्वरूप मन से, वुद्धि के माध्यम से और चिन्तन की शक्ति से समझा जा सकता है। जिस माध्यम से, जिस मन से तात्विक दृष्टि का स्वरूप चिंतन किया जाता है, जव उस मन मे ही उलझन हो, मन ही गठीला वना हुआ हो, तव उसकी एकाग्रता स्थिर नही रहती है। ऐसी स्थिति मे परमात्मा के स्वरूप को समझना कठिन हो जाता है।

मन की इस प्रकार की विचित्र दशा के अनेक कारण हैं, पंचमकाल का प्रभाव, उसकी स्थिति की विचित्रता तो मन को विचित्र वनाने मे निमित्त है ही, परन्तु साथ ही इसके प्रभाव से ससार के अन्दर विचित्र-विचित्र परिस्थितिया और विचित्र गुट भी वन रहे हैं : उनमे मनुष्य का मन उलझ जाता है और वह सही मार्ग से ध्यान हटाकर दूसरी ओर लग जाता है। इसीलिए कवि का कथन है कि—

गच्छना भेद वहु नयण निहारता,
तत्वनी वात करता न लाजो।

जहाँ अलग-अलग पार्टिया हो, अलग-अलग व्यक्तियो के गुट हो, अलग-अलग स्थिति से चिंतन हो और अलग-अलग भावना से स्वार्थ का पोपण हो, इस प्रकार का वातावरण जव कुछ इन्सानो मे चलता हो तो व्यक्ति का मन दूषित हुए विना नही रहता है। व्यक्ति सोचता है कि मैं अमुक गुट या अमुक गच्छ के साथ वधकर चलूगा तो मुझे वडी भारी सफलता मिलेगी। मैं दुनिया मे प्रसिद्ध हो सकूगा। इस प्रकार की भावना जिस मानस मे चलती है तो वह मानस भले ही तत्वो की वाते करता हो, ऊपरी दृष्टि से कितना ही चितक कहलाता हो परन्तु जव उसके अन्दर स्वार्थ सिद्धि की आसक्ति रहती है, जव वह इस गच्छ या उस गुट के साथ गाढे तरीके से वध जाता है, तव वह प्रभु की साधना का चिन्तन करनेवाला नही रहता है।

• •

९०. सती राजमति और रथनेमि

अरिष्टनेमि के लघुभ्राता रथनेमि इस ससार को त्याग कर एक गुफा मे आध्यात्मिक साधना में बैठे थे । परन्तु वहा भी उनके डिगने का प्रसग आ गया । आँधी और तूफान के साथ पानी बरसने लगा । सती राजमति नेमिनाथ भगवान के दर्शन के लिए जा रही थी । बरसात मे भागते हुए साध्वी ने उस गुफा मे प्रवेश किया । सती सोचने लगी कि इस मे कौन रह सकता है ? साध्वी ने वाहर के प्रकाश मे से अन्धकार मे प्रवेश किया था । जब व्यक्ति सहसा ही प्रकाश से अन्धेरे मे प्रवेश करता है तो उसे कुछ दिखलाई नही देता है । सती राजमति को वहा कुछ नही दिखने से वह अपने वस्त्रो को उतारकर सुखाने मे तत्पर हुई । वस्त्र सूखने मे कुछ समय लगा । इधर गुफा मे बैठने वाले रथनेमि, जो अपनी आध्यात्मिक साधना मे तन्मय थे, राजमति को देखकर चचल हो उठे और आध्यात्मिक धारा से नीचे उतकर मलीन भावना अभिव्यक्त करने लगे । परन्तु सती तेजोमयी थी और आत्मज्ञान सम्पन्न थी । ऐसी कठिन परि-स्थिति में भी वह तलवार की धार (संयम) पर अखण्ड रूप से चलने वाली थी । रथनेमि को फिसलते देख उस सती ने उन्हे बोध देना ही उचित समझा और इस प्रकार फटकार लगाई—

> धिरत्थु तेऽजसोकामी, जो त जीविय कारणा ।
> वंतमिच्छसि आवेउ, सेय ते मरण भवे ।।
>
> उत्तरा. अ. २२ गाथा ४३.

अरे, धिक्कार है तुझे अपयश के कामी ! तू आत्मिक साधना के लिए साधु वना और आत्मवल साधने के लिए गुफा मे वैठा, परन्तु यहा वैठे-वैठे भी उस साधना से भ्रष्ट होने की स्थिति मे चल रहा है । ऐसे जीवन को धिक्कार है, इससे तो मरण ही श्रेयस्कर है ।

सती के ऐसे जोशीले वचन आध्यात्मिक धारा पर चलने के कारण तीक्ष्ण थे । वे किसी के दिल पर चोट पहुँचाने के लिए नही थे । वे तीक्ष्ण वचन तो मोह जाल को काटने के लिए थे । रथनेमि के मन पर उन वचनो का प्रभाव पडा और वे पुन. आत्मस्थ हो गए ।

६१. साधुओं के प्रति श्रावकों का कर्तव्य

आप सत और सतियो की तारीफ करते हुए नही चुकते हैं और लम्बे-लम्बे भजनो के साथ उनकी स्तुति कर बैठते हैं। आप ये स्तुति के आभूषण तो सत और सतियो के गले मे डाल देते हैं, परन्तु ये स्तुति जेवर पहनाकर आप चुप नही रहे। आप ये जेवर पहना तो देते हैं, परन्तु इससे कभी सत फूल गये तो वे आभूषण घात सिद्ध होगे। अत. उनकी रक्षा करने के लिए आपको तत्पर रहना है। यदि साधु-साध्वी तारीफ में फूलकर अपने आपको सब कुछ समझ बैठें और मर्यादा भग करना चाहे तो आपका कर्तव्य है कि विनय के साथ उन्हे कहे कि भगवन्! आप सावधान रहिए!

आप आदर के साथ कहे—भगवन्! सावधान रहिए। आपने ससार का परित्याग किया है, आप आध्यात्मिक जीवन के साथ तन्मय होकर चल रहे हैं। आप पवित्रता के प्रतीक हैं। यदि आप पवित्र रहेगे तो हमको उज्ज्वलतम उपदेश मिलेगा। आप महाव्रतो को तोड देंगे तो आपका स्वय का जीवन सुरक्षित नही रहेगा और फिर आप हमको क्या उपदेश देंगे? आप स्वय अनैतिक जीवन को अपना लेते हैं और उपदेश देते हैं तो हमारे जीवन पर कोई असर नही होगा। हम अपनी सीमा में दृढ रहे और आप अपनी सीमा में दृढ रहकर कार्य करें।

इस प्रकार का श्रावकोचित कर्तव्य, साधु-साध्वियो को अपनी मर्यादा में सुस्थिर बनाने में अत्यत सहायक होता है।

९२. मानव तन का महत्त्व

मानव शरीर ही एक ऐसा शरीर है कि जिसके द्वारा आत्मा से परमात्मा स्वरूप प्राप्त किया जा सकता है। शरीर तो देवो के भी है, और नारकी के जीवो के भी हैं। परन्तु वे इस परम ज्योति को प्राप्त करने में समर्थ नही हैं। मनुष्य का शरीर ही एक ऐसा विशिष्ट शरीर है कि जिसमें आत्मा की विशिष्ट या अद्भुत ज्योति जगमगाई जा सकती है। शरीर की प्रक्रिया मे इन्सान रात और दिन अपना समय लगा रहा है परन्तु वह समझ नही पा रहा है कि मेरे शरीर की ये प्रक्रियाएँ शुभ हैं या अशुभ हैं, ये उस परम प्रकाश की ओर जा रही है या अन्धकार की ओर जा रही हैं, मेरे द्वारा प्रकाश को पाने के लिए प्रयत्न किया जा रहा है या अन्धकार को एकत्रित करने के लिए चेष्टा हो रही है ?

इस तथ्य को समझकर मानव को चाहिये कि वह दुर्लभ प्राप्त मानव-तन से सत्-पुरुषार्थ कर आत्मा से परमात्म स्वरूप को उजागर करने का प्रयत्न करे।

९३. लोहा और घन

लोहे को कूटने वाले एक पिंड को भी घन की संज्ञा दी गई है। कितनी ही चोटे लगाई जायें, परन्तु लोहा कुटा जायेगा और घन मजबूत रहेगा। इसी प्रकार जिन आत्माओ ने अपने आध्यात्मिक जीवन का पूर्ण आनन्द प्राप्त कर लिया है, उन पर आपत्तियो के कितने ही घन क्यो न पडें, सकट के कितने ही झझा-वात उनको झकझोरने के लिये क्यो न आ जायें, फिर भी उनमें तीन काल में भी दु:ख का प्रवेश नही हो पाता। इस प्रकार का आनन्द समूह जिस आत्मा को प्राप्त हो जाय वह चरम सीमा पर पहुँचने के साथ ही सदा के लिये आनन्द घन में निवास करने वाली वन जाती है।

९४. मुक्त आनन्द

मैं वर्तमान जीवन की थोडी सी बात बता दूँ। जब कोई व्यक्ति शारीरिक अथवा मानसिक या बौद्धिक श्रम करता हुआ थक जाता है तब उसे आराम करने की इच्छा होती है और वह गाढी निद्रा मे सो जाता है। उस प्रगाढ निद्रा मे न इन्द्रिया जाग रही हैं और न मन स्वप्न देख रहा है। सब शारीरिक अवयव शिथिल पड़े रहते हैं। उस अवस्था से जब मनुष्य जागता है, तब उससे पूछते है, कहो भाई, कैसी नीद आई ? वह कहता है कि बडा आनन्द रहा। फिर पूछते हैं, अरे भाई-कैसा आनन्द रहा ? वह कहता है, कुछ मत पूछिये, आज तो ऐसी निद्रा आई कि सारी थकावट दूर हो गई और मुझे बहुत ही आनन्द का अनुभव हुआ। उस आनन्द का वर्णन वह नही कर सकता।

उस आनन्द के अनुभव की पूरी अभिव्यक्ति वह नही कर पा रहा है। तब प्रश्नकर्ता पूछता है कि क्या तुमने मीठा भोजन किया ? वह कहता है कि मीठा भोजन कुछ नही किया।

क्या सुन्दर रूप देखा ?
नही, वह भी नही देखा।

क्या कोई सुगन्ध सूघी ? वह भी नही सूघी। क्या मधुर गाना सुना ? वह भी नही सुना। क्या किसी का स्पर्श किया ? वह भी नही किया। तो क्या तुमने स्वप्न देखकर आनन्द लिया ? नही स्वप्न भी नही देखा। फिर भी मुझे बडा आनन्द आया।

बताइये, वह आनन्द क्या है ? न उसमे खाना-पीना है, न सुनना है, न स्पर्श है यह तो सुषुप्तावस्था का विषय है किन्तु जब व्यक्ति काम, क्रोध, मान, माया और राग, द्वेष से हटकर 'आत्मवत् सर्वभूतेषु, की भावना के साथ समतामय जीवन को ढालने की कोशिश करे, तो वह जागृत अवस्था मे इससे भी बढकर आनन्द प्राप्त कर सकता है, मोक्ष का आनन्द तो इससे भी अनन्तगुणा अधिक है।

मोक्ष मे क्या आनन्द है, इसका लेखा-जोखा आप इन्द्रियो से नही ले सकते हैं। आत्मिक सुख इन्द्रियातीत है। वह आनन्द तो आत्मा की अनुभूति से ही लिया जा सकता है।

९५. दिव्य-नेत्र

ज्ञानियों का कथन है कि वर्तमान में इन्सान की जो ज्ञान शक्ति चल रही है, वह सिर्फ इन निस्सार स्थूल तत्वो तक सीमित है। वे नेत्रो से सिर्फ चर्म चक्षुओ से देखते हैं और व्यवहार दृष्टि मे वे ही लिये जाते हैं, परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से जो लोचन है, वे केवल ज्ञान, केवल दर्शन है। जब आत्मा को केवल ज्ञान, केवल दर्शन उपलब्ध होता है, परिपूर्ण ज्ञान और परिपूर्ण दर्शन की अवस्था बनती है, उस वक्त ही वह दिव्य नेत्र—'जिन' के नेत्र देख पाती है।

९६. 'जिन' नहीं दिखते गौतम को

प्रभु महावीर ने गौतम से कहा कि—'न हु जिणे अज्ज दिस्सई बहुमए दिस्सई मग्गदेसीए' हे गौतम, आज तुझे 'जिन' नही दिख रहे हैं परन्तु 'जिन' का दिखाया हुआ मार्ग दिख रहा है।

यह कितनी आश्चर्यकारी बात है। जिन भगवान केवलज्ञान से युक्त अलौकिक प्रकाश को लेकर अतिशय सम्पन्न शरीर से विराजे हुए हैं, गौतम गणधर 'जिन' के चरणो की उपासना कर रहे हैं, प्रश्न के साथ ही चरणो को छूते हुए उनके नेत्रो का अवलोकन कर रहे हैं फिर यह परस्पर विरोध दिखाने वाली बात कैसे ? परन्तु पैनी दृष्टि से आध्यात्मिक चिन्तन किया जाये तो बात बिल्कुल सही है। गौतम स्वामी छद्मस्थ थे। वे केवलज्ञान के प्रकाश से युक्त नही थे और केवलज्ञानी भगवान् की 'जिन' अवस्था राग-द्वेष से रहित थी।

आत्मा की उस पूर्ण शुद्ध अवस्था को छद्मस्थ व्यक्ति के नेत्र देख नही पाते हैं। इसीलिये वे 'जिन' के साक्षात् रहते हुये भी उनके दर्शन नही कर पाते। उन्हे जो दर्शन हो पाते हैं वे अनुमानित 'जिन' के होते हैं।

९७. दृढ़ संकल्प

एम. ए. की कक्षा का लक्ष्य निर्धारित करते हुये भी यद्यपि प्रथम कक्षा मे रहने वाला विद्यार्थी एम ए. की कक्षा की योग्यता नही देख पाता है, परन्तु एम ए की योग्यता का दृढ सकल्प जब मन मे रहेगा तो वह सबसे पहिले प्रथम कक्षा मे ही प्रवेश करेगा, वर्णमाला ही सीखेगा। फिर वर्णमाला के साथ अक्षरो की सयुक्त वाक्यावली सीखेगा और उसके माध्यम से प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि कक्षाओ को पार करता हुआ क्रमिक रूप से आगे बढेगा। यदि वह एम. ए. की कक्षा मे प्रवेश करना चाहता है तो वह अन्य कक्षाओ को लाँघ नही सकेगा और प्राथमिक योग्यता प्राप्त किये बिना कोई एम. ए. की योग्यता प्राप्त नही कर सकता। जिसका लक्ष्य स्थिर होता है वह क्रमिक विकास करते हुए एक दिन अवश्य ही एम. ए. की कक्षा का पूरा अनुभव कर लेता है, वैसे ही यदि आत्मा एम. ए. के तुल्य अपना लक्ष्य ईश्वरत्व को प्राप्त करने का बनाती है तो एक दिन उस पर गति करती हुई परमात्म रूप का वरण भी कर लेती है।

□ □

९८. कीचड़ न लगे

मनुष्य गृहस्थ अवस्था मे रहता हुआ अपनी घरेलू समस्याओ को हल करना चाहता है क्योकि उस पर परिवार की जिम्मेदारी है और समाज तथा राष्ट्र का उत्तरदायित्व भी है। यदि वह इन सब जिम्मेदारियो को निभाता हुआ अपने लक्ष्य की ओर बढना चाहता है तो परिवार के सरक्षरण के लिये उसे कुछ कार्य करना पडता है। आवश्यकतानुसार अर्थोपार्जन के लिये भी व्यवसाय करना पडता है तो उसमे भी ऐसी क्रियाएँ हो जाती हैं कि जिनके माध्यम से मलिनता आत्मा के साथ सयुक्त हो जाती है। गृहस्थ कितना ही प्रयत्न करे परन्तु वह अपने आपको सर्वथा अलिप्त नही रख पाता है। फिर भी इन कारणों से आत्मा मे जो मलिनता आ रही है, वह अर्थ दण्ड माना जायेगा। परन्तु परिवार आदि की जिम्मेदारियो के निर्वाह करने मे जिन क्रियाओ का प्रयोजन नही है तथा राष्ट्र, समाज और परिवार के धरातल पर जिनकी जरा भी आवश्यकता नही है, उन प्रवृत्तियो को तो सबसे पहिले त्याग देना चाहिये।

मनुष्य रास्ते मे चलता है और उस रास्ते मे कीचड है तो वह यह नही चाहेगा कि मेरे पैर कीचड़ मे भरे। यदि कीचड उछलेगा तो कपडो के भी लगेगा। वह इसकी सावधानी रखता हुआ कार्य करेगा तो कीचड से बचता रहेगा। परन्तु सावधानी रखते हुए भी कदाचित उसके पैरो मे कीचड़ लग जाये और कपडो के भी कीचड़ लग जाये तो नही चाहते हुये भी वह लाचारी से उन्हें बर्दाश्त करेगा। वह सोचेगा कि इसके बिना मेरा आगे का कार्य नही हो सकता, ऐसी स्थिति मे उसका यह कार्य नाजायज नही कहा जा सकता। परन्तु इसके विपरीत जिस व्यक्ति को कीचड मे पैर देने की क्रिया करने का प्रयोजन ही नही है और फिर भी यदि वह इरादतन कीचड मे पैर रखता है, अपने धुले हुए कपड़ो को खराब करता है और शरीर को भी कीचड में भरता है तो इस पुरुप को आप क्या कहेगे ? आपकी दृष्टि मे वह पुरुप कैसा होगा ? आप उसे बुद्धिमान कहेगे या इसके विपरीत ?

आप भले हो मेरे सामने बोले या न बोलें परन्तु मन मे अवश्य सोचेंगे कि इस तरह कार्य करने वाला व्यक्ति समझदार नही कहा जा सकता। वह जीवन के महत्त्व को जरा भी न समझते हुए व्यर्थ ही अपने पैर और कपडे कीचड़ से भर रहा है।

मनुष्य इस बाहरी कीचड़ से बच सकता है और बचने का प्रयत्न भी कर सकता है परन्तु आन्तरिक जीवन की ओर लक्ष्य नही होने से वह अपनी आत्मा को निरर्थक पापो के कीचड से लिप्त कर रहा है। वह व्यर्थ के पापो को रोक नही रहा है। इसलिए आज के इन्सान की जिन्दगी इन पापो से ज्यादा मलिन बन रही है, इस तथ्य को समझो।

यदि वह वर्तमान जीवन को व्यर्थ के झझावतो से बचाना चाहता है तो व्यर्थ के पापो से बचने का प्रयत्न करे। अतः गृहस्थ अवस्था मे रहते हुये आपका कर्तव्य है कि आप अपनी आंखो आदि इन्द्रियो और मन का प्रयोग सदुपयोगपूर्वक उसी स्थान पर करने की कोशिश करें, जहा आवश्यकतावश गृहस्थ जीवन मे रहते हुये करना पडता हो।

□□

९९. आक्रान्ता के प्रति श्रावक का कर्तव्य

एक डाक्टर मरीज को ऑपरेशन हाल मे ले जाता है और ऑपरेशन के लिए छुरी से उसके पेट आदि को चीरता है। ऐसा करते समय क्या वह मरीज को नष्ट करने के लिये पेट चीर रहा है या उसका रक्षण करने के लिये पेट चीर रहा है?

वह उसको मारने के लिये छुरी नही चला रहा है। वह तो उसके पेट मे जो फोडा है, जिससे कि उसकी जिन्दगी खतरे मे है, उससे उसको बचाने के लिये छुरी चला रहा है। उसका लक्ष्य मारना नही है, परन्तु रोग को हटाना है।

इसी प्रकार श्रावक भी चतुर डॉक्टर की तरह होता है। वह सोचता है कि इस आक्राता व्यक्ति को तृष्णा का एक फोडा हो गया है या उसमे व्यर्थ की लालसा का रोग पैदा हो गया है। इसके कारण वह शाति भग करता हुआ मेरे परिवार पर, समाज या राष्ट्र पर आक्रमण करके उसे तहस नहस करना चाहता है। ऐसी स्थिति मे श्रावक उस व्यक्ति को मारने के लिये नही परन्तु उसके रोग को समाप्त करने के लिये और रोग का असर परिवार, समाज या राष्ट्र पर से दूर करने के लिये तैयार होता है। जो ऐसा रोग दूर करने के लिये तैयार होता है तो वह इस कार्य को करते हुए हिंसा के कार्य में भी प्रवृत्त हो सकता है। परन्तु ऐसी स्थिति मे उसका यह हिंसा का कार्य अत्यल्प कर्म बन्धन कराने वाला माना जाएगा।

□□

१००. लक्ष्मी का वास

जिन प्राणियो का यह ध्यान है कि इस संसार मे इन्द्रिय जनित सुख प्राप्त करने के लिये लक्ष्मी की आवश्यकता है और जितनी सम्पत्ति एकत्रित कर ली जाएगी, उतनी ही सुख की अभिवृद्धि होगी, वे इसी भावना को लेकर लक्ष्मी के पीछे बुरी तरह भागते है। परन्तु वे समझ नही पाते हैं कि लक्ष्मी कहा है और वह किसके चरणो मे रहती है।

लक्ष्मी का एक नाम चचला भी है। जिसका नाम ही चचला है वह किसी भी व्यक्ति के साथ स्थायी रूप से नही रह सकती। स्तम्भ यदि मजबूत है तो झडा कितना ही चचल हो, वह उसके सहारे टिका रहता है परन्तु यदि स्तम्भ डोलायमान है तो फिर झडा तो उड़नेवाला है ही, उसका कोई ठिकाना ही नही रहेगा। लक्ष्मी रूपी झडा जिसको कमला भी कहा गया है यदि स्थिर चरणो के साथ है तो उसकी चचलता भी समाप्त हो सकती है और वह स्थायी रूप से उन स्थिर चरणो मे सदा के लिये बनी रह सकती है। यदि उसके चरण ही स्थिर नही हैं तो फिर वह कमला स्थिर कैसे रह सकती है ? कवि ने रूपक दिया है कि—

चरण कमल कमला वसे रे, निर्मल सीपर पद देख।
समल अस्थिर पद परिहरे रे, पंकज पामर पेख॥

दुनिया के लोग समझते हैं कि पकज यानी कमल पर लक्ष्मी का निवास है और वह कमल का सहारा लेकर चलती है परन्तु ज्ञानीजनो का कथन है कि कमल के सहारे लक्ष्मी टिक नही सकती, क्योकि कमल स्वय चचल है। कमल कीचड से पैदा होने वाला है, और जो कीचड से पैदा होने वाला है उसके साथ लक्ष्मी कैसे टिक सकती है ? लक्ष्मी तो निर्मल बुद्धि को देख कर ही स्थिर रह सकती है।

परमात्मा के चरणो का सहारा लक्ष्मी ने लिया। कमला ने लिया तो क्या समझ कर लिया ? इसलिये कि प्रभु के चरण निर्मल हैं, उनमे मल नही है, वे सीपर हैं, कभी भी विचलित होने वाले नही हैं। ऐसे प्रभु के चरणो में कमला वसने लगी और उसने पंकज को छोड दिया क्योकि वह मलयुक्त था।

चचला कमजोर कमल को छोडकर प्रभु के चरणों मे पहुँची, यह एक अलंकार है। इस अलकार के माध्यम से आप वास्तविक सुख दिलाने वाली वह कमला आध्यात्मिक लक्ष्मी है, उसे समझिये, उस लक्ष्मी को निर्मल चरण ही पसद हैं। वह प्रभु के चरणो को निर्मल समझ कर ही उनमे स्थिर है।

हाड, मास, रक्त आदि से वने मनुष्य के चरण तो नाशवान हैं। ये चरण स्थिर रहने वाले नही हैं। परन्तु उन सिद्ध परमात्मा के चरण तो श्रुत और चारित्र रूप हैं। श्रुत और चारित्र रूप चरण परमात्मा की विराट् शक्ति के अटल स्तम्भ हैं। जिस व्यक्ति को परमात्मा का स्वरूप पसन्द है, जिसको स्थायी शाति चाहिये और जो सदा के लिये आध्यात्मिक लक्ष्मी को पाना चाहता है, वह प्रभु के श्रुत धर्म और चारित्र धर्म रूप इन दोनो परम पवित्र चरणों को ही ग्रहण करेगा।

१०१. सर्पिणी और काल

जब सर्पिणी के बच्चे पैदा होने का समय आता है तो वह अपने शरीर की कु डली लगाकर, उस घेरे के बीच मे बच्चे देती है। उसी समय उसे जोर से भूख लगती है। तब वह घेरे मे रहे हुए बच्चो को खा जाती है, परन्तु सयोग से जो बच्चा घेरे से अलग हो जाता है, वह बच जाता है। ऐसी ही दशा इस काल रूपी सर्पिणी की है। इसके गोल चक्कर मे जो फसे हुए हैं, उनमे से कोई विरला ही बच सकता है।

जिस प्रकार सर्पिणी का कोई बच्चा, उस कु डली के आकार वाले घेरे से कूद जाय, अलग हो जाय तो बच सकता है। इसी प्रकार काल रूपी सर्पिणी के द्वारा जो ससारी प्राणियो के जन्म-मरण का चक्कर चल रहा है। उस चक्कर से जो प्राणी कूद पड़ते हैं, अर्थात् श्रुत-चारित्र धर्म को अगीकार कर साधना के पथ पर बढ़ जाते हैं, वे काल चक्ररूपी सर्पिणी से सर्वथा, सर्वदा के लिये हटकर परम-मुक्त स्थान को प्राप्त कर लेते हैं।

□□□

१०२. मछली और आज का प्राणी

जो परिवार मे रह रहे हैं, वे इन नाशवान सुखो की स्थितियो का अनुभव कर रहे हैं। परन्तु सोचिये कि उन्हे शाति का कितना अवसर मिल रहा है। मछेरा मछली मारने के लिये जाता है तो वह थोडी सी आटे की गोली भी अपने काटे मे लगा देता है। जब वह उसको पानी मे डालता है तो बेचारी भद्रिक मछली खाने के लोभ मे, उस काटे के अन्दर फस जाती है। वह उसके दुष्परिणामो को नही देखती है। वह नही सोच पाती है कि मैं जरा सी आटे की गोली खाऊंगी तो मेरा मुँह इसमे विन्ध जाएगा। वह खाने को जाती है और जैसे ही मुँह को खोलती है तो काटे मे फस जाती है। फिर तो मृत्यु ही है, बचने का कोई उपाय नही है।

संसार की यही विचित्र दशा चल रही है। सासारिक प्राणी भी दु:खों से परिपूर्ण, सुखो के सुनहरे ऊपरी जाल को लिये हुए भौतिक पदार्थ धन-सम्पत्ति परिवार-पत्नी आदि को देखकर आकर्षित हो जाते हैं और उन्हे पाने के लिये अपनी जीवनी शक्ति को खर्च कर देते हैं।

□ □ □

१०३. मन की प्रवृत्ति

शरीर का आकार बडा है। हम शरीर को चलते हुए, खाते हुए, बैठते हुए, सुनते हुए देखते हैं। शरीर सम्बन्धी तमाम क्रियायें हर किसी की दृष्टि मे आ सकती हैं। परन्तु मन की क्रियायें सीधे रूप मे मनुष्य के समक्ष नही आती हैं। उनका अनुमान नही किया जा सकता है, परन्तु यह अनुमान सहज है कि आत्मा इतने बडे शरीर का सचालन जिस माध्यम से कर रही है, वह माध्यम ही इसका मुख्य है। जो द्रव्य मन से प्रभावित होता है और जब वह इन्द्रियो के साथ सयुक्त होकर व्यापार मे लगता है तो सारे शरीर की क्रियाएँ विचित्र रूप मे दिखाई पडती है। मनुष्य का व्यवहार, जैसा भी परिलक्षित हो रहा है, इसी से आप को पहिचान सकते हैं। मन यदि विमलता के साथ चल रहा है तो शरीर की क्रियाएँ भी विमल कार्य की ओर हो जायेंगी और वह मलिन कार्य नही करेगा। यदि मन मे मलिनता है तो नेत्रो मे भी मलिनता आए बिना नही रहेगी। यदि मन मे कुटिलता है तो मनुष्य के व्यवहार मे भी कुटिलता रहेगी। मन मे यदि छल है तो मानव के व्यवहार में भी छल प्रदर्शित होगा। मन गदा है तो गदी प्रवृत्ति अवश्य होगी। अतः आचरण की शुद्धि के लिये मन की शुद्धि आवश्यक है।

□ □ □

१०४. भँवरे की कल्पना

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम्,
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पकज श्री :
इत्थ विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे,
हा हन्त हन्त नलिनी गज उज्जहार:

रात्रि व्यतीत होगी, प्रात.काल होते ही सूर्य उदित होगा और कमल की पखुड़िया खिलेगी। ऐसा चिंतन भँवरा कर ही रहा था कि कवि के अनुसार एक मदोन्मत्त हाथी उस सरोवर मे पानी पीने को आता है और उस कमलिनी को उखाड़ कर फेक देता है। कमलिनी के टूटने के साथ ही भँवरा भी नष्ट हो जाता है।

भाइयो ! वह भँवरा तो चतुरिन्द्रिय प्राणी है। उसके चार इन्द्रियो का विकास है। उनमे द्रव्य मन की अवस्था नही है। वह भाव मन के अध्यवसाय से काम करता है। वर्तमान सुख की ही उसकी सज्ञा है। वह इस कमल के मकरंद के पीछे अपनी जिन्दगी की परवाह नही करता है, सारी दुनिया को कुछ नही समझता है और अत मे उसी मे फसकर अपना अमूल्य जीवन खो देता है। ठीक इसी प्रकार आज के व्यक्ति भी भंवरे की भाति ही संसार मे फसते जा रहे हैं। सोचते हैं कि जब जिन्दगी के अन्तिम क्षण आएगे, तब कर लेंगे। किन्तु काल रूपी हाथी आता है और उसकी जिन्दगी को नष्ट कर डालता है।

१०५. फल की कामना

मेरे भाई कभी-कभी नवकारसी का त्याग करते हैं तो उसके फल को भी जानने की कोशिश करते हैं। वे कहते है, "महाराज, इसका कितना फल मिलेगा ?" वे सामायिक करते हैं, पौषध करते हैं, तपस्या मे जोर लगाते हैं, धर्म साधना मे लगते हैं, परन्तु इन सब साधनाओ मे लगते हुए भी यदि मन मे लालसा है कि इनसे कितना क्या फल मिलेगा, इनसे हमारे कितने कर्म टूटेंगे और स्वर्ग का कितना सुख नजदीक आएगा, तो कहना होगा कि उन्होने आध्यात्मिक जीवन का गुण पूरा मकरद नही लिया। जिसने आध्यात्मिक जीवन के गुणो का जरा सा भी आस्वादन कर लिया, उसके मन मे स्वर्ग के दिव्य सुख की लालसा नही रहेगी और न कीर्ति की लालसा ही रहेगी, वह तो देखेगा कि ये सारे कचरे हैं। इनके पीछे पड़ना, अपने आपको दरिद्री बनाना है।

कहने का तात्पर्य यह है कि आध्यात्मिक सम्पत्ति से जिसका जीवन शून्य है और जिसमे आध्यात्मिक गुणो की सुगन्ध और वस्तुतः आनन्द की लहर नही है तो उस जीवन का विशेष मूल्याकन नही हो सकता।

□□

१०६. आध्यात्मिक रस

गजसुकुमालजी, उन भव्य आत्माओं में से थे, जिन्होने आध्यात्मिक गुणो के रस का आस्वादन कर लिया था। वे त्रिखडाधिपति श्रीकृष्ण वासुदेव के लघु भ्राता थे। उन्होने इन नाशवान पदार्थों को तुच्छ समझ लिया और आध्यात्मिक रस मे तल्लीन हो गए। उनको वैराग्य पथ से मोडने के लिये अनेक प्रलोभन दिये गये। उनके चरणों मे सारा वैभव श्रीकृष्ण महाराज ने रख दिया। उन्हें सिंहासन पर, राज्याभिषेक करके बैठा दिया और स्वय श्रीकृष्ण नीचे खडे होकर कहने लगे ! "महाराज, अब आप राजनपति राजा बन गए हैं, कहिये मेरे लिए क्या आज्ञा है ?"

यदि गजसुकुमाल मुनि ने आध्यात्मिक गुणो के मकरद का आस्वादन नही किया होता तो भले ही वे सतो की सगति और प्रभु के चरणो मे गए हों, परन्तु इन प्रलोभनो और राज्य सिहासन के चक्कर मे वे आ जाते। वे कह देते कि मैं राजाधिराज बन कर राज्य करूंगा। परन्तु उनके हृदय मे वह अध्यात्म रग प्रवेश कर गया था। वे जरा भी विचलित नही हुए। आध्यात्मिक गुणो के मकरद का आस्वादन एक बार भी किसी ने कर लिया है, तो उसका जीवन बदल ही जायेगा।

□□

१०७. जन्मांध

एक व्यक्ति जन्माध है। जन्म से ही उसकी आखो मे रोशनी नही है। परिवार मे अन्य सदस्य उसको सम्भालने वाले भी नही हैं। इधर वह वृद्धावस्था से भी जर्जरित हो गया है। वह व्यक्ति लाठी के सहारे अपनी शौचादिक क्रिया की निवृत्ति के लिये शहर से बाहर जाना चाहे तो वह दीवार के सहारे-सहारे चलता है। परन्तु इधर तो शारीरिक ताकीदी और उधर आँखो मे रोशनी नही है। ऐसी स्थिति मे द्वार नही मिले तो उस व्यक्ति को कितनी हैरानी और थकान महसूस होगी। यदि सहसा उसके नेत्र खुल जायें तो उस व्यक्ति को कितना आनन्द आएगा, उसको कितना विश्राम मिलेगा, यह भी वही जान सकता है।

वैसे ही मिथ्यात्व के रोग के कारण यह आत्मा जन्मान्ध व्यक्ति की तरह बनी हुई है और जर्जरित होकर चल रही है। इसको सहारा देनेवाला वस्तुत: देखे तो कोई नही है। यह अपने आपकी स्थिति मे भटक रही है। यदि सहसा इसके समकित नेत्र खुल जाये तो उसे परम आनन्द का अनुभव हुए बिना नही रहेगा।

• •

१०८. दो बीज : समता-विषमता के

मस्तिष्क जीवन का महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है। उसमे विषमता के विष वृक्ष का अकुर भी है और समता का पौधा भी है। दोनो का स्थल एक ही है। जैसे कि एक ही भूमि मे अफीम भी बोई जा सकती है और गन्ने का पौधा भी उगाया जा सकता है, परन्तु यदि गन्ना उपजाना है तो अफीम की खेती को हटाना होगा और उस जमीन को साफ सुथरी बनाकर सम अवस्था मे लाना होगा। अफीम सम्बन्धी विषम तत्त्व को हटाकर यदि गन्ने का पौधा आरोपित किया जाता है तो अमृत तुल्य गन्ने की मधुरता उपलब्ध हो सकती है।

मनुष्य के मस्तिष्क की इस उपजाऊ भूमि मे अफीम के तुल्य मल, विक्षेप और आवरण की खेती लहलहा रही है, जिसके परिणामस्वरूप आत्मा सत्रास पा रही है और उसे शाति के क्षण नही मिल रहे हैं। जिधर देखो उधर अशाति का जाल दृष्टिगत हो रहा है। ऐसी जगह पर, यदि समता रूपी इक्षु-रस की खेती उपजाना है तो उस मल, विक्षेप और आवरण रूपी अफीम को साफ करना होगा और मस्तिष्क की तमाम विचारधाराओ को समता सिद्धात से ओतप्रोत बनाना होगा। मनुष्य का मस्तिष्क समता सिद्धात से परिमार्जित होना चाहिये। इस समता सिद्धात दर्शन मे समस्त मानव जाति का समावेश है, सम्पूर्ण विश्व की शाति का बीज इसमे समाया हुआ है।

यदि मनुष्य का मस्तिष्क समता सिद्धात दर्शन से शुद्ध बनाया जाय तो उसमे शाति का बीजारोपण हो सकता है।

यदि व्यक्ति के मस्तिष्क मे समता जीवन दर्शन का बीज अकुरित हो गया है तो उसकी वाणी मे समता का प्रवाह बहने लगेगा, उसके नेत्रो से समता का झरना बहेगा, उसके कानो मे समता का नाद गूजेगा, उसके हाथ समता के कार्य मे अग्रसर होगे, उसके पैरो की गति समता जीवन की साधना मे तत्पर होगी, उसके शरीर के अणु-अणु मे से समता जीवन दर्शन का प्रकाश फूट पडेगा और वह समता की परम पावनी गंगा बहाता हुआ, जन-जन के मन को पवित्र करता हुआ चलेगा। ◇

१०९. सूर्य-रश्मि

सूर्य की प्रभा किरणें जब पत्थरों पर पडती हैं तो पत्थर भी चमकने लगते हैं। मिट्टी के ढेलो पर वे किरणें पडने लगी तो वे भी चमकने लगे। मिट्टी और पत्थर मे चमक नही है परन्तु सूर्य के प्रभाव से प्रभावित होकर उनमे भी चमक आती है। वैसे ही जिन आत्माओ का शरीर, निर्मल आत्मा से, निर्मल विचारो से जुदा रहता है, वह शरीर भी उन पवित्र आत्मिक विचारो से प्रभावित हुए बिना नही रहता है।

•□•

११०. आत्मा रहित शरीर

प्रत्येक मानव मे अमृततुल्य जीवन बनाने की कला है। परन्तु वह बाहर से नही आती है। मानव अपने आप मे उसका सृजन कर सकता है। विचारो का प्रभाव अणु-अणु पर पडता है और जब आत्मा के प्रदेशों मे अमृत हो तो वह बाहर बहे बिना नही रहेगा। जैसे पानी अलग है, घडा अलग है, परन्तु पानी घडे मे भरा हुआ है तो वह उसके अणु-अणु से बाहर आये बिना नही रहेगा। जैसे काच की हडिया अलग है और दीपक अलग है। परन्तु जब दीपक को काच की हंडिया मे रखकर जला देते हैं तो उसका प्रकाश हडिया के अणु-अणु से निकलने लगता है। यदि काच की हडिया दीपक रहित है तो वह कोई प्रकाश नही देगी। वैसे ही शरीर आत्मा रहित है तो वह बेकार है, जड है। उसमे शाति सुधा रस नही है, अमृत का झरना नही है। • •

१११. दुनिया के कांटे

दुनिया के अन्दर चारो तरफ काटे ही काटे बिछे हुए हैं। तीक्ष्ण शूले दिख रही हैं। व्यक्ति सोचता है कि मैं कैसे चलूं ? ये शूलें मेरे पैरो मे चुभ जायेंगी। परन्तु यदि वह विवेक के साथ चिंतन करे तो उन शूलो से डरने की स्थिति नही रहेगी। यदि वह इस कल्पना से चले कि मैं इन सब शूलो को साफ करके बिल्कुल साफ रास्ते पर चलू तब वह न तो उन शूलो को साफ कर सकेगा और न चल ही सकेगा। कहावत है—

'न नौ मन तेल होगा और न राधा नाचेगी।'

यह तो कठिन मार्ग है। यदि तुम्हे इस पर चलना हो तो अपने पैरो मे पादत्राणिका ग्रहण करलो। आप उसे सीधे शब्दो मे गृहस्थ अवस्था मे जूते या पगरखी बोल देते हैं। जिसने जूतियाँ पहन रखी हैं तो फिर काटे उसका क्या विगाड करेंगे ? तब वह तो वेधड़क चलेगा। उसको कोई भी कष्ट होने वाला नही है।

वैसे ही यदि आप जीवन को निर्मल बनाना चाहते हैं तो दुनिया की मलिनता के काटो को छू-छूकर अपने आपको दुःखी क्यो बना रहे है। आप क्यो नही अपने जीवन मे ऐसे आवरण लगा लें कि जिससे सारी की सारी दुनिया मलिन काटो से भरी रहे परन्तु आपका जीवन तो अवाध गति से इस प्रकार चले कि कोई आपका कुछ भी न विगाड सके। युद्ध के मैदान मे जाने वाला सेनानी अपने शरीर पर कवच पहिन लेता है तो फिर कितने ही तीक्ष्ण वाण क्यों न आयें परन्तु उसे चोट नही लगती। वैसे ही यदि आप अपने जीवन मे धार्मिकता-नैतिकता का कवच पहिन लेते हैं और सामाजिक कुरीतियो को मिटाने की दृष्टि से फिजूल खर्च को मिटा देते हैं तो इस दुनिया की मलिनता और कांटे आपका कुछ भी विगाड़ नही कर सकेंगे।

११२. चोर को पहचानो

मान लीजिये कि एक गृहस्थ अपने स्थान पर वैठा हुआ है। उसके घर मे कोई चोर प्रवेश कर रहा है। यदि मालिक उसे चोर न समझ कर साहूकार समझ रहा है तो वह वेधड़क घर मे प्रवेश करेगा। परन्तु यदि घर का मालिक उस चोर को चोर समझ लेता है और कहता है कि तुम आ तो रहे हो परन्तु मैं समझता हूँ कि तुम चोर हो। तुम मेरे घर मे चोरी करने को आये हो तो करो चोरी मै वैठा हूँ। ऐसी हालत मे क्या वह चोर आपके घर मे चोरी कर सकेगा? चोर समझेगा कि मुझे चोर मान लिया गया है तो अब मैं यहा चोरी कैसे करूँ? वह भाग खडा होगा।

जैसे उपर्युक्त परिस्थिति मे घर का मालिक चोर को चोर समझ लेता है और उसे सम्बोधन करके अपने घर की सम्पत्ति सुरक्षित रख लेता है, इसी प्रकार इस घर का मालिक अर्थात् आत्मा भी यदि अपनी वुरी आदतो को लुटेरा समझ ले और उन्हे सम्बोधन करे कि देखो, मैं तुम्हे पहिचान गया हूँ, तुम मेरी अमुक-अमुक आत्मिक सम्पत्ति को चुराने आए हो। मैं वैठा हूँ, अब तुम चोरी कैसे कर सकते हो? इस प्रकार की सावधानी यदि इस आत्मा मे आ जाए तो उसके पाप, वुराइयाँ कभी नही रह सकेंगी।

□□

११३. भ्रान्त धारणा : माल भी खाना मुक्ति भी जाना

कई व्यक्तियो की यह अभिलाषा रहती है कि माल खाना और मोक्ष मे भी जाना। वे दोनो हाथ लड्डू रखना चाहते हैं परन्तु ऐसा सम्भव नही है। अधूरे-अधकचरे विचारको ने यह सस्ता नुस्खा भोले जीवो को भ्रमित करने के लिए पकडा दिया है। ऊपर-ऊपर से यह नुस्खा बडा मोहक और लुभावना लगता है। हर कोई ऐसा सीधा-सरल तरीका अपनाना चाहता है परन्तु बन्धुओ ! याद रखना चाहिए कि एक म्यान मे दो तलवारें नही रह सकती। पदार्थों का मोह भी बना रहे और मोक्ष भी मिल जाय-ऐसा कभी न हुआ है और न होगा। यदि ऐसा सीधा रास्ता होता तो अतीत काल के तीर्थंकर और महापुरुष राज्य और वैभव-विलास के परित्याग का और वनो मे रहकर कठोर तप और साधना करने का कठिन मार्ग क्यो अपनाते ?

भोग-विलास और ऐश्वर्य के वातावरण मे रहकर केवल भावना के बल पर मोक्ष की साधना की बात जितनी सरल है, उसका आचरण उतना ही कठिन है। सत्ता और सम्पत्ति को, चाहे वह व्यक्तिगत हो या राष्ट्रीय हो, अपने अधीन रखने वाला व्यक्ति अपनी भावना को सात्विक रख सके, यह अत्यन्त ही कठिन और दु शक्य है। यदि भावना की शुद्धि से ही आत्मा को ऐसी परम उपलब्धि हो जाती होती तो तीर्थंकर और दूसरे हजारो महापुरुष राज्य वैभव को न छोडते और तपश्चर्या के कठोर मार्ग का अवलम्बन न लेते और न ऐसा करने का उपदेश ही देते। अत' इस मिथ्या धारणा को दिमाग से हटा देना चाहिए। इस सस्ते नुस्खे के चक्कर मे नही आना चाहिए। यदि इस नुस्खे का सहारा लिया जायगा तो यह आत्म-वचना होगी।

आत्मा की वर्तमान विडम्बनापूर्ण स्थिति पर-पदार्थो के ससर्ग के कारण ही तो है। इस समर्ग को हटाये विना आत्मा का

उद्धार कैसे हो सकता है ? पदार्थों की ममता-मूर्छा ही तो आत्मा को मलिन कर रही है। यदि हम आत्मा रूपी दर्पण को स्वच्छ करना चाहते हैं तो इस ममता के मैल को धोना ही पडेगा। अत-एव बाह्य पदार्थों की ममता का परित्याग करके ही साधना के मार्ग मे आगे वढा जा सकता है। अनेक महापुरुषो ने यही मार्ग अपनाया है और इसी से आत्मा को कर्मों की कैद से मुक्त किया है। मोह-ममता मे रहकर किसी भी आत्मा ने मुक्ति नही पाई है।

□□

११४. दुर्लभ मानव जीवन का सदुपयोग हो।

वहुत पुण्य के पुज एकत्रित होते हैं तव मानव का शरीर प्राप्त होता है। यह अत्यन्त दुर्लभ उपलब्धि है। ऐसे सुन्दर सुअवसर को प्राप्त करके यदि भवचक्र को मिटाने का प्रयास नही किया और आत्मा की वही स्थिति वनी रही, भवचक्र का एक भी चक्कर कम न हुआ तो वहुत पुण्य से प्राप्त मानव-भव अकारथ ही चला जायेगा। चिन्तामणि रत्न पाकर कौए को उडाने मे यदि उसे फेंक दिया तो चिन्तामणि का पाना न पाना एकसा ही हो जाता है। मानव-भव चिन्तामणि रत्न के समान है। इसका सदुपयोग आत्मा के कल्याण के लिए कर लेना चाहिए।

• • •

११५. सहिष्णुता

सन् १६१५ की घटना है। काशी-नरेश के पेट का ऑपरेशन किया जाना था। ऑपरेशन के पूर्व आमतौर पर रोगी को बेहोश किया जाता है। काशी नरेश ने कहा—डॉक्टर, मुझे बेहोश मत करिये। मैं होश-हवास मे ऑपरेशन करवाना चाहता हूँ। डॉक्टर ने कहा "बडा ऑपरेशन है, दो घण्टे लगेंगे। इतने समय तक वेदना सहन नही की जा सकती। पेट चीरना है, मामूली काम नही है। इतनी वेदना इन्सान नही सह सकता। वह छटपटाने लगेगा, हिलेगा-डुलेगा ही नही, उछलने लगेगा; जीवन खतरे मे पडेगा और डॉक्टर का पाटिया गोल हो जाएगा। मैं यह खतरा लेने को कतई तैयार नही हूँ।"

काशी नरेश ने कहा, "मैं दो घण्टे चूं तक नही करूंगा। आप ऑपरेशन करके देखिये। मैं बेहोश होना नही चाहता।"

डॉक्टर को विश्वास नही हुआ। उसने नरेश की कसौटी के लिए प्रयोग करना चाहा। नरेश ने कहा—प्रयोग करके देख लो। प्रयोग शुरू हुआ। नरेश ने ध्यान लगा लिया। होश-हवास की स्थिति मे उनके हाथ पर चाकू का प्रयोग किया गया। खून बहा। नरेश बिल्कुल शान्त थे। दो घण्टे तक उन्होने चू तक नही की। डॉक्टर हैरान था। दो घण्टे के बाद डॉक्टर ने पूछा, 'वेदना हो रही है।'

उत्तर मिला, "इतनी देर तक तो नही किन्तु अब वेदना का अनुभव हो रहा है। पहले मेरी दृष्टि अन्यत्र थी, मेरी वृत्ति अन्यत्र लगी हुई थी, मेरा ध्यान अन्यत्र केन्द्रित था।"

डॉक्टर आश्चर्यचकित था। आखिर काशी नरेश की इच्छानुसार बिना बेहोश किये उनके पेट का ऑपरेशन किया गया। वे असाधारण रूप से शान्त रहे। दो घण्टे तक बिल्कुल चुपचाप, बिना हिले-डुले शान्तभाव मे स्थिर रहे। यह अपने ढग का पहला उदाहरण है। यह एक ऐतिहासिक प्रसग है। कालान्तर मे उन्होने राज्य त्याग कर आध्यात्मिक साधना मे अपना जीवन लगाया।

११६. प्रार्थना का प्रभाव

प्रार्थना के माध्यम से भक्त के हृदय-तन्त्री के तार झकृत हो उठते हैं। इतना ही नही, प्रार्थना के समय भक्त के हृदय के तार परमात्मा के साथ जुड जाते हैं जिससे उसका हृदय प्रकाशमान हो जाता है। पावर-हाउस (बिजली-घर) से तारो के माध्यम से सम्बन्धित होते ही जैसे लट्टू (वल्व) रोशनी से जगमगाने लगता है वैसे ही प्रार्थना के द्वारा परमात्मा का सम्पर्क होते ही भक्त का हृदय भी प्रकाशमान हो उठता है, पाप की कालिमा नष्ट हो जाती है और वासनाओ की गन्दगी मिट कर हृदय साफ सुथरा वन जाता है। प्रार्थना वह पथ्य है जो हृदय के रोगो को मिटा कर उसे आरोग्य और आनन्द प्रदान करता है। □

११७. मोह को जीतो

तीर्थंकर जैसे महती शक्ति के धारक महापुरुषो ने भी जव मोह पर विजय पाने हेतु कठोर साधना का मार्ग अपनाया तो आपकी और हमारी क्या विसात जो हम सहज ही—विना किसी कठोर साधना के मोह को परास्त कर सकें। उन महापुरुषो ने कितनी कठोर जीवन-चर्या अपनाई। कितने महीनो तक निराहार रहे। कितने वर्षों तक परिषह-उपसर्गों को स्थिर-चित्त से सहन करते रहे। ध्यान की कितनी कठोर प्रक्रिया अपनाई। आज तो चार लोगस्स का ध्यान करने वैठते हैं तव भी मन इधर-उधर दौडने लगता है। जरा-सा मच्छर आकर वैठ जाता है तो ध्यान की धारा खण्डित हो जाती है। ऐसी स्थिति मे विना विशेष प्रयत्न के सहज ही मोह को जीतने की वात करना आत्मप्रवचना मात्र है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नही है कि मोह को जीतना असम्भव है। मोह को जीता जा सकता है लेकिन उसके लिए आवश्यक है दृढ सकल्प और प्रवल पुरुषार्थ की। □

११८. श्राभ्यन्तर विकृति की भयंकर परिणति

विश्व के वातावरण पर विचार करते हुए प्रतीत होता है कि पापमय वासनाओ से आत्मा का स्वास्थ्य उत्तरोत्तर गिरता चला जा रहा है, मानव-समाज विकारो की गन्दगी से बुरी तरह ग्रस्त होता चला जा रहा है। जहा गन्दगी का विस्तार है वहा स्वास्थ्य का ह्रास अवश्यम्भावी है। बाहर की गन्दगी अधिक से अधिक एक जीवन के लिए खतरनाक होती है लेकिन आभ्यन्तर गन्दगी एक नही, अनेक जन्म-जन्मान्तर के लिए खतरनाक होती है। इस आभ्यन्तर विकृति की भयकर परिणति सैकडो हजारो जन्मो तक अशुभ फल-परम्परा के रूप मे होती है। अतएव यह गन्दगी अत्यन्त भयकर है। इस गन्दगी को दूर हटाने के लिए मनुष्य को पहले यह देखना होगा कि यह गदगी कहाँ से आ रही है गन्दगी के उद्गम का सूक्ष्मता से विश्लेषण किये विना उसको मिटाया नही जा सकता। वाह्य गन्दगी तो स्पष्ट मालूम होती है। कपडे मैले हैं, शरीर पर मैल जमा है, घर मे कूडा-कचरा इकट्ठा हो रहा है, मक्खिया भिनभिना रही हैं, डास-मच्छरो की वहुलता है। इन सवसे वाहरी गन्दगी को जान लिया जाता है और उसके निवारण के उपाय भी आसानी से किये जा सकते हैं, परन्तु आभ्यन्तर गन्दगी के विषय मे ऐसी वात नही है। उस आभ्यन्तर गन्दगी को पकड़ पाना आसान नही है। वाह्य गन्दगी के सूक्ष्म कीटाणुओ को तो सूक्ष्म-दर्शक यत्र द्वारा देखा जा सकता है परन्तु आन्तरिक विकृति के सूक्ष्म अश आत्मा की भीतरी तहो मे इस प्रकार छिपे रहते हैं कि उन्हे पकडने की शक्ति किसी सूक्ष्मदर्शक यत्र मे नही है। उन्हे पकडने के लिए तो उनके अनुरूप यत्र की आवश्यकता रहती है। वह यत्र है अन्त समीक्षण

११६. वासना के मूल को काटो

टहनियों और पत्तो को नोचने की अपेक्षा मूल को उखाडना ही कारगर और सार्थक होता है। ऊपर की निष्पत्ति हटा दी जाने पर भी यदि मूल शेष रह जाता है तो वह पुनः उग उठता है। सुना जाता है कि बाजरे की टहनी कोमल अवस्था मे काट दी जाती है तो पुनः फूट आती है। मेवाड और मारवाड मे रिजका (रचका) नाम का पौधा होता है जिसे काटने पर वह पुनः पनपता रहता है। उसकी समाप्ति तभी होती है जब उसे जड से उखाड दिया जाता है। अतएव वासनाओं को जड़ मूल से उखाडने का प्रयास करना चाहिए।

अफसोस इस बात का है कि मानव अपनी आत्मा को ऊपर-ऊपर से शुद्ध करता है लेकिन जड़ को नही पकडता है। जड को पकड कर उसे उखाडने का प्रयत्न नही करता है। मूलत. सोचने का विषय यह है कि आत्मा की दुर्दशा का मूल क्या है। उस मूल को ही पकड़ने का प्रयत्न किया जाय, पत्तो और टहनियो को नोचने का निरर्थक श्रम क्यो किया जाय।

आत्मा की दुर्दशा का मूल कारण है—मोह। मोह वह मादक मदिरा है जो आत्मा को बेभान बना देती है। केवल इतना ही नही, मोह की मदिरा मे दोहरी शक्ति होती है। मदिरा तो व्यक्ति की चेतना को केवल आच्छादित करती है जबकि मोह आत्मा की चेतना को आच्छादित करने के साथ ही साथ उसे विपरीत दिशा मे— मिथ्यात्व मे—पटक देता है। जिसके फलस्वरूप आत्मा सत्य को असत्य, असत्य को सत्य, हित को अहित और अहित को हित समझने लगता है। अपना स्वरूप भूल कर वह पर-रूप मे रमण करने लगता है, स्वरूप उसे तुच्छ लगने लगता है और पौदगलिक पदार्थों के क्षणिक सुखाभास मे सुख की अनुभूति करने लगता है। यह आत्मा की भयकर दुर्दशा और विडम्बना है। इसका एक मात्र कारण मोह ही है। इसी को जड मूल से उखाडना है।

१२०. मदिरा-निर्माण की घृणित प्रक्रिया :

मदिरा-पान की आदत वाले भाई भी यदि मदिरा के वनने की प्रक्रिया पर ध्यान दें तो सम्भव है कि उन्हे स्वयमेव मदिरा से घृणा हो जाय। मदिरा वनाने वाले महुओ को सडाते हैं, उनमे लम्वे-लम्वे कीडे पड़ जाते है। उन कीडो वाले महुग्रो को वर्तन मे डालकर ग्राग पर चढा कर उबालते है जिससे कीडो का रस भी उसमे मिल जाता है। चाहे आज के वैज्ञानिक युग मे शराब तैयार करने की कोई नई प्रक्रिया हो परन्तु वह भी निर्माणाधीन दशा मे घृणित ग्रौर दुर्गन्ध पूर्ण होती है। तैयार हो जाने के वाद ग्राकर्षक वोतलो मे विविध नामो के साथ भले ही वह प्रस्तुत की जाती हो परन्तु वह ग्रत्यन्त घातक ग्रौर हानिप्रद है। ग्रतएव मदिरा-पान से प्रत्येक सद्-गृहस्थ को ग्रवश्यमेव वचना चाहिए।

जिस प्रकार यह मदिरा गृहस्थ के जीवन को झकझोर देती है, इसी प्रकार मोह की मदिरा ग्रात्मा को झकझोर देती है जिससे ग्रात्मा चतुर्गति मे भटकती रहती है। अतएव मोह को हटाकर अपने जीवन रूपी कपडे को धर्म के रग मे रग लेना चाहिए। सयम के रग मे रगने से जीवन की सार्थकता है।

१२१. कर्मों का राजा : मोह

आठ कर्मों मे मोह कर्म सवसे अधिक शक्तिशाली है। ग्रतएव वह ग्राठ कर्मो का राजा कहलाता है। मोह कर्म की जव तक प्रव-लता रहती है तव तक ग्रन्य सव कर्म भी शक्तिशाली बने रहते हैं। मोह कर्म के शिथिल होते ही अन्य कर्म भी शिथिल पड जाते हैं। जिस प्रकार राजा के पराजित होकर भाग जाने पर सेना भी स्वयं भाग खडी होती है उसी प्रकार मोह के पराजित होते ही अन्य कर्म स्वयं पराजित हो जाते हैं। अतएव मोह को उखाड़े विना ग्रात्मा का उद्धार होने वाला नही। मोह को हटाने का प्रयास ही ग्रात्मा के उद्धार का द्वार खोलना है। परन्तु यह काम ग्रासान नही है। मोह की प्रवल शक्ति को तोडना साधारण काम नही है। इसके लिए दृढ सकल्प और अदम्य पुरुपार्थ की ग्रपेक्षा रहती है।

१२२. सदाचार

मानव ने अपने जीवन का सही मूल्याकन नहीं किया है। "सदाचार से मानव-जीवन की महत्ता है।" इस तथ्य को उसने भुला दिया है। यही कारण है कि व्यक्ति, परिवार, समाज, देश और विश्व मे विकृतिया फैल रही हैं, अशान्ति उभर रही है और चारो ओर उच्छृ खलता का वातावरण बन रहा है। धार्मिक और नैतिक मर्यादाएँ लुप्त हो रही है। कर्तव्य-भावना निकल चुकी है। सर्वत्र स्वार्थान्धता और लोलुपता का बोलबाला है।

जीवन के सारभूत तत्त्व सदाचार की ओर अधिकाश व्यक्तियो का ध्यान कम ही है समाज और राष्ट्र के अधिकाश कर्णधार भी इस विषय मे चिन्तन नही कर रहे है। परिणाम स्वरूप व्यक्ति जर्जरित होता चला जा रहा है। पारिवारिक जीवन खोखला हो रहा है। सामाजिक जीवन विशृ खलित हो रहा है। राष्ट्रीय धरातल पर जाएं तो राष्ट्रीय चरित्र का नाम निशान भी दृष्टिगोचर नही हो रहा है। विश्व की दृष्टि से अपेक्षित सदाचार का कही पता नही है। ऐसी परिस्थिति मे प्रत्येक सुज्ञ और विवेक-सम्पन्न व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह इस विषय की ओर अपनी चिन्तन धारा को मोडे। यह सन्देहातीत तथ्य है कि जब-जब मानव ने सदाचार की अवहेलना की, उस पर विपत्ति के बादल मडराये हैं। विषमताए पनपी हैं, जीवन का धागा टूटा है, समाज उच्छृ खल बना है और राष्ट्र पर सकट गहराया है। अतएव यदि जीवन का सही मूल्याकन करना है, यदि नव निर्माण की शक्ति के साथ वर्तमान को स्वर्णिम आदर्शो पर टिकाना है और भविष्य को उज्ज्वलतर बनाना है तो जीवन मे सदाचार को अपनाना ही होगा। सदाचार को अपनाये बिना जीवन मे, पारिवारिक परिवेश मे, जाति या समाज-गत क्षेत्र मे, राष्ट्रीय परिधि मे और अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति मे—सर्वत्र सदाचार और अनुशासन की आवश्यकता है।

१२३. पारिवारिक कर्तव्य

पारिवारिक जीवन की शाति हेतु परिवार के सदस्यो मे अपने कर्तव्य और उत्तरदायित्वो का बोध होना आवश्यक है। परन्तु प्राय: देखा जाता है कि आधुनिक परिवारो मे घरेलू वातावरण अशांत और कलुषित रहता है। छोटी-छोटी बातो को लेकर परिवार के सदस्य घर मे महाभारत खडा कर देते हैं। परिणामस्वरूप घर की शाति नष्ट हो जाती है, घर के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। पारिवारिक स्नेह की भावना टूक-टूक हो जाती है और घर का आगन कलह एव क्लेश का अड्डा बन जाता है। जो परिवार सुख का आगार बन सकता है, वही कारागार के समान दु:खदायी बन जाता है। इसका एक मात्र कारण है—परिवार के सदस्यो मे कर्तव्य भावना का अभाव। यदि परिवार के सदस्य अपने दायित्व को समझ कर पारिवारिक आचार सहिता और अनुशासन का पालन करते हैं तो निस्सदेह वह परिवार सुखी, समृद्ध और शान्त होता है। वहा विषमता का वातावरण व्याप्त नही होता। उसकी आर्थिक अवस्था डावाडोल नही होती। पारिवारिक जीवन वहा टूटते नजर आते है, जहा परिवार के सदस्य अपनी जिम्मेदारियो को भुला कर एक ही व्यक्ति पर निर्भर हो जाते है। परिवार मे एक ही व्यक्ति कमावे और शेष व्यक्ति हाथ पर हाथ धरे बैठे रहे—उपभोग मात्र करें तो उस परिवार की दशा विकृत और विषम हो जाती है। पारिवारिक जीवन को सुखमय बनाने के लिये परिवार के सभी सदस्यो को अपने कर्तव्य का बोध होना चाहिये।

१२४. आध्यात्मिकता की ओर झुकाव – भौतिकी वैज्ञानिकों का

विश्व मे वैज्ञानिक क्षेत्र मे वहुत प्रगति हुई है। विज्ञान ने भौतिक दृष्टि से वहुत विकास किया है। नित्य नये अनुसन्धानो ने विश्व को चमत्कृत किया है। निस्सदेह भौतिक दृष्टिकोण से विज्ञान वहुत आगे वढ चुका है। परन्तु इन अनुसधानो का लक्ष्य भौतिक मात्र होने के कारण दुनिया के आगन मे जो सुख-शाति परिलक्षित होनी चाहिए थी, वह नही हो रही है। इतना ही नही इन अनु-सन्धानो के कारण विश्व मे अशान्ति का वातावरण वढा है। यह सव निराशाजनक स्थिति है, परन्तु इस बीच अव आशा की किरण प्रस्फुटित हो रही है। भौतिकवादी वैज्ञानिक अव इस सत्य और तथ्य को समझने लगे हैं कि एकान्त भौतिकवादी दृष्टिकोण विश्व के लिए हितकारी नही है। उन्हे अव अनुभव होने लगा है कि भौतिकता ही सव कुछ नही है। जिन लोगो ने भौतिक साधनो के सहारे दुनिया मे रक्त क्राति का सूत्रपात किया और जो वहुत दूरी तक इस मार्ग पर चले, वे भी अव अनुभव करने लगे हैं कि दुनिया मे शान्ति स्थापित करने का यह सही मार्ग नही है। उनकी दृष्टि अव वाहर से हटकर अन्दर की ओर मुडती हुई दृष्टिगत होती है। वे समझने लगे है कि आध्यात्मिक धरातल पर ही सच्चरित्रता स्थायी रह सकती है। नैतिकता भी आध्यात्मिक आधार पर पुष्ट होती है अन्यथा वह प्रदंशन और व्यवसाय का रूप ले लेती है।

इस आध्यात्मिकता की ओर जिन वैज्ञानिको का ध्यान गया है, उनमे प्रमुख स्ट्रागवर्ग है जिन्होने मानव जीवन के विपय मे

महत्त्वपूर्ण विवेचन किया है और अभौतिक तत्त्व की स्थापना प्रतिपादित की है। उन्होने अपनी 'यग युनिवर्स' नामक पुस्तक मे जो अभौतिकताका विवेचन प्रस्तुत किया है, वह दूसरे विश्वयुद्ध के बाद का क्रान्तिकारी विवेचन माना जाता है। उसकी भूमिका लिखी है डॉ. आइन्सटाइन ने। वैज्ञानिक अनुसधान की सभी शोध-सस्थाओ ने उसका हृदय से स्वागत किया है। वह अभौतिक तत्त्व अध्यात्म की ओर सकेत कर रहा है।

हमारे यहा की कुछ विचित्र ही स्थिति है। पश्चिम के लोग भौतिकता से ऊब कर, त्रस्त होकर, परेशान होकर अन्यत्र शाति की खोज कर रहे है, वहा भारतीय जनता का मानस भौतिकता की ओर ललचाई दृष्टि से देख रहा है। यह भारतीय जनता के लिए लज्जा का विषय होना चाहिए कि पाश्चात्य देश जिसे उतार कर फेंक रहे हैं, उसे भारतीय अपना शृगार समझ रहे हैं। यूरोप, अमेरिका या रूस के लोग भौतिकता से ऊब चुके हैं और वे अभौतिक तत्त्व की प्राप्ति के प्रति उत्सुकता प्रकट कर रहे है, वहा भारतीय जनता विरासत मे प्राप्त अध्यात्म को भुलाकर भौतिकता की ओर कदम बढा रही है। यदि सुखशाति की तीव्र पिपासा है तो भौतिकता को छोड, आध्यात्मिकता अपनानी होगी।

□□

१२५. युवकों की धर्म के प्रति अरुचि का मूल

बुजुर्ग आज युवको की गलतियाँ निकालते हैं कि युवक बिगड गये। वे कॉलेज मे अपनी जिन्दगी व्यतीत कर रहे है। धर्म-कर्म को भूल गये। न माँ-बाप की सेवा करते हैं और न धर्म को समझते है। अपनी स्वच्छन्दता से ही चलते है। इस प्रकार के आरोप बुजुर्गों के चलते हैं तो युवक लोग भी पीछे नही रहते। वे कहते है कि हम क्या धर्म-कर्म करें, पहले धर्म-कर्म का स्वरूप तो हमे समझाया जाए।

आज के युग मे बौद्धिक धरातल का बहुत विकास हुआ है। वे अपने बौद्धिक विकास से आत्मा और परमात्मा के विषय मे प्रश्न करते हैं। भगवान ने कहा—"माणुसुत्त दुल्लहा" मनुष्यत्व दुर्लभ है तो सिद्ध कीजिए। साधु क्या है, आचरण क्या है, ऐसे कई प्रश्न युवको के होते हैं। वे उनका समाधान चाहते हैं। उनके मन मे जिज्ञासा है। जिज्ञासा से ही वे माता-पिता के सामने पेश आते हैं। पर जब बुजुर्ग लोग समाधान नही कर पाते और डाट देते हैं कि तुम नास्तिक हो गये हो जबकि वे नास्तिकता से प्रश्न नही करते, परन्तु समझने के लिए प्रश्न करते हैं। यदि उनका समाधान योग्य स्थल पर हो जाय—माता-पिता कर दें तो वे कभी धर्म से विमुख नही बनते। मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि बडे बुजुर्गों मे जितनी तत्त्वो की रुचि नही है, उतनी आज के पढे-लिखे युवको मे है।

वे समझना चाहते हैं। उनकी भाषा मे उनको समाधान मिलना चाहिए। माता-पिता यदि समाधान नही दे पायें तो उनको सौम्य शब्दो मे समझाना चाहिए कि तुम्हारे प्रश्न उत्तम हैं, परन्तु मेरे अन्दर इतनी योग्यता नही है। तुम नोट कर लो, कोई अच्छे सन्त आयेंगे तब तुम्हे ले जाकर तुम्हारे प्रश्नो का समाधान करायेंगे। इस प्रकार से समझाया जाय तो वे धर्म से किनारा नही करेंगे। ऐसे शब्दो के बजाय यदि आप उन्हे डाट देते हैं, उनकी जिज्ञासा वृत्ति को ठुकरा देते हैं तो वे अगर धर्म के नजदीक भी होते है तो हट जाते हैं। कभी युवक सन्तो के पास पहुँचे और वे उनका समाधान नही कर पाये तो सन्त सरलता से कह दें कि जितना मेरे मे ज्ञान है उसी से समाधान कर रहा हूँ, फिर भी तुम्हारा समाधान नही हो पाया हो तो कोई बडे विद्वान् सन्त आयें तो उनसे अपनी तृप्ति कर लेना। इस प्रकार सरलता से व्यवहार हो जाता है तो कभी भी वे धर्म से

दूर नही भागते हैं। परन्तु जो स्वयं भी समाधान नही करते और तिलमिला जाते है, उन्हे डाटने लगते हैं कि तुम तो विगड़ गये हो, तो युवक नजदीक आते हुए भी दूर भाग जाते हैं।

युवको मे कई खूबियां भी हैं, परन्तु बुजुर्गों का क्रियाकलाप क्या हो रहा है। जब उनका व्यवहार भी ठीक नही बनता है, उनका धार्मिक क्रिया भी ठीक नही बनती है। सामाजिक सवर, पौषध धार्मिक क्रियायें करते हुए कही त्रुटि रह गई हो तो उसे सरलता से स्वीकार कर लेना चाहिए। इस प्रकार करने पर युवक और बुजुर्गों मे अच्छी तरह समझौता हो सकता है। युवक सोच कि ये बुजुर्ग हैं, अनुभवी है, और इनमे होश है तो हम युवक जोश के साथ इनकी छत्रछाया में क्रान्ति करें। परिवार, समाज और देश-राष्ट्र मे क्रान्ति करे। इस प्रकार दोनो परस्पर समझ कर चलें तो दोनो मे समन्वय सध सकता है। अलग-अलग कडी हो जाय तो समन्वय नही सध सकता। मानव अपने जीवन को निखार सकता है, अपनी लाइट जगा सकता है। परन्तु जगेगी कव, जवकि खुद की तैयारी होगी। भगवान् महावीर ने इसीलिए पहले मानवता की वात कही। इसके लिए सवसे पहले खूवी आनी चाहिए कि युवक और वुजुर्गों का जो संघर्ष है वह समन्वय के रूप मे परिणित हो जाय। वुजुर्गों के क्या विचार हैं, इसे युवक समझें, और युवको के क्या विचार हैं, इसे वुजुर्ग समझने की क्षमता रखें। यह नही कि जरा-जरा सी वात पर तिल-मिला उठें। वुजुर्ग उनकी वात पूरी तरह सुनें और शान्ति के क्षणो में उनका उत्तर दिया जाय। इस प्रकार समन्वयता का मार्ग निकल आता है।

आज के युवको को मानवता के धरातल पर विशेष आदर्श प्रस्तुत कर एकता का भव्य प्रसग उपस्थित करना चाहिए। जव तक उनमे एकता नही आयेगी, तव तक युवक भी कुछ नही कर पायेंगे। अमूल्य मानव तन निरर्थक चला जायेगा। मैं तो चाहता हूँ कि युवक धक्के खायें तव भी आगे वढें। मैं कभी-कभी रूपक दे दिया करता हूँ कि प्रगतिशील युवक वह है जो अपने रास्ते पर चलता रहता है। कितनी ही आपत्तियां आये परन्तु हतोत्साहित नही हो, अवाध गति से चलता रहे, लेकिन जोश और होश वरावर रखे। केवल होश रखे, जोश नही रखे या केवल जोश रखे परन्तु होश नही रखे तो काम नही चलेगा। जव दोनो आ जाते है तो कोई कारण नही कि गति और प्रगति मे रुकावट हो। □□

१२६. उल्टी गंगा बह रही है

दुनिया के अन्य देशो का ध्यान भारत की आध्यात्मिकता की ओर आकर्षित हो रहा है। वे भारत भूमि को आध्यात्मिक जीवन की जननी मानते हैं। यहा आकर वे जीवन मे शाति का अनुभव करने की अभिलाषा रखते हैं। आत्मिक साधना के प्रति उनमे जिज्ञासा और रुचि जागृत हो रही है। परन्तु दु.ख का विषय है कि भारतीय जनता अपनी मौलिकता को नष्ट कर भौतिकता की भूल-भुलैया मे फसती चली जा रही है। आत्मिक वैभव के उत्तराधिकारी स्वय को दीन-हीन मानकर अमेरिका, रूस आदि विदेशो की ओर ललचाई दृष्टि से देख रहे है जबकि विदेशी जनता भारत की आध्यात्मिक सम्पदा से आकर्षित हो रही है। भारतवासी भौतिक सम्पदा की भूख से अमेरिका, इग्लैण्ड आदि देशो की ओर देख रहे हैं। इस प्रकार यहा उल्टी गगा वह रही है।

भारतीय जनता का मानस इतना गुलाम बन गया है कि उन्हे अपनी सस्कृति, नीति-रीति अच्छी नही लगती और प्रत्येक क्षेत्र मे विदेशो की नकल करना ही उनका एकमात्र लक्ष्य हो गया है। विदेशो की जनता भारत से, उसकी सास्कृतिक और आध्यात्मिक सम्पदा से बहुत कुछ अपेक्षाए रखती है, जबकि भारतवासी रूस की रक्तक्राति से प्रभावित हो रहे हैं। वे रूस और चीन की नीतियो के राग अलाप रहे हैं जबकि वहा की जनता उनको असफल मान कर अन्य मार्ग की शोध मे लगी हुई है। भारतीय जनता की यह अविवेकपूर्ण नकल-वृत्ति उनके दिमाग की गुलामी को अभिव्यक्त करती है।

दूसरो की तरफ अविवेकपूर्ण दृष्टि रखने से, पराई वस्तु को ही अच्छी मानने से दशा विषम और दीन-हीन बनी हुई है। यदि भारतीय जनता उत्तराधिकार मे मिले हुए अपने सिद्धातो पर, चरित्र निष्ठा पर प्रामाणिकतापूर्वक आचरण करती तो वह विश्व मे सबसे अग्रगण्य होती।

अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है, अब भी सभलने का अवसर है। यदि सुख-शांति चाहते हो, यदि दुनिया मे प्रगतिशील कहलाना चाहते हो, यदि प्रगति की दौड मे आगे वढना चाहते हो तो इसके लिए एक ही उपाय है, चरित्र की प्रतिष्ठा। यदि सच्चरित्र को महत्त्व दिया जाय, उसका वास्तविक मूल्याकन किया जाय, उसको जीवन का मापदण्ड वनाया जाय, उससे व्यक्ति को तोला जाय तो भारत का सारा नक्शा ही वदल सकता है। आवश्यकता है कि इस चारित्र्य गुण को जीवन के हर क्षेत्र मे पुन: प्रतिष्ठित किया जाय। व्यक्तिगत जीवन मे, पारिवारिक परिवेश मे, धर्म और समाज के क्षेत्र मे, राष्ट्रीय परिधि में और विश्व के विशाल दायरे मे चारित्रिक गुणो का विकास किया जाय। ऐसा करने से उन सभी समस्याओ का समाधान हो जाएगा जो आज भयकर रूप में देश और विश्व के सामने खडी है।

□ □ □

१२७. यौवन का विस्फोटक रूप

जवानी अपने आप मे इतनी दीवानी है कि यदि इस पर नियत्रण नही रखा जाय तो यह भयकर अनर्थो की परम्परा को जन्म देती है। यह शात और सुखी जीवन में आग लगाने वाली हो सकती है। जवानी (यौवन) के साथ यदि धन सम्पत्ति का योग हो जाय तो अनर्थो की सभावना एक पर एक ग्यारह की तरह वढ जाती है। यदि इनके साथ प्रभुत्व (सत्ता) मिल जाय तो १११ एक सौ ग्यारह की तरह अनर्थो की सभावना वहुत अधिक वढ जाती है। यदि इनके साथ अविवेक भी जुड़ जाय तो फिर कहना ही क्या है, सर्वनाश ही समझ लेना चाहिए। यौवन, धनसम्पदा, सत्ता और अविवेक—ये चारो अलग-अलग भी भयकर अनर्थकारी होते है। जव ये चारो एक स्थान पर एकत्र हो जाय तव तो कहना ही क्या ? उस परिस्थिति में सर्वथा वर्वादी ही समझ लेनी चाहिए। वे सर्वनाश के कारण वनते है।

१२८. गांधीजी का आत्मबल

दक्षिण अफ्रीका की घटना है। वहा मजदूरो और मालिको के बीच वेतन वृद्धि और कार्य के घटो को लेकर विवाद हो गया था। गाधीजी ने मजदूरो के पक्ष को उचित माना, अतएव वे उनका मार्ग-दर्शन कर रहे थे। मालिको ने सोचा कि यह गाधी मजदूरो को प्रोत्साहित कर रहा है, अतएव इसको ही अपने पक्ष में कर लेना उचित है। यह गाधी गरीब देश—हिन्दुस्तान से आया है, शायद यह पैसो का भूखा है। उन्होने गांधीजी को एकान्त मे बुलाया और कहा, "मिस्टर गाधी! तुम दस-बीस हजार रुपये ले लो। इन मजदूरो का दिमाग खराब मत करो।"

गाधीजी ने उत्तर दिया! "मैं मजदूरो का माथा खराब नही कर रहा हू अपितु उनका मस्तिष्क सुधार रहा हू। मै पैसो का गुलाम नही हूँ। मै न्याय-नीति मे विश्वास रखता हू। अहिंसा में मेरी आस्था है। मजदूरो को उनके श्रम का उचित पारिश्रमिक मिलना ही चाहिए। उनसे उचित सीमा तक ही काम लिया जाना चाहिए। वे मानव है और उन्हे मानवीय अधिकार किसी भी कीमत पर मिलने ही चाहिए। ऐसी मेरा दृढ मन्तव्य है।"

मालिको ने गाधीजी को फुसलाने के बहुत प्रयत्न किये। वडे-वडे प्रलोभन दिये परन्तु गाधीजी नीति पर दृढ रहे। प्रलोभन कारगर नही हुए तो उन्होंने गाधीजी को धमकी दी। एक व्यक्ति पिस्तौल लेकर खडा हो गया और कहने लगा "मिस्टर गाधी! अपने इष्टदेव को याद करलो। वटन दबाते ही समाप्त हो जाओगे।"

गाधीजी का उत्तर बड़ा मार्मिक था। वे बोले "जो व्यक्ति मुझे इष्टदेव के स्मरण की वात कहता है, वह मुझे कभी नही मार सकता।"

उस व्यक्ति के हाथ से पिस्तौल नीचे गिर पड़ी। वह थर-थर कापने लगा। गाधीजी वहां से निकल आये।

१२६. "धम्मो सुध्दस्स चिट्ठइ"

जैसे शुद्ध पात्र मे रहा हुआ दूध विशेष रूप से गुणकारी होता है, उसकी शोभा मे विशेष वृद्धि हो जाती है उसी तरह हृदय मे धर्म की प्रतिष्ठा की जाती है, तो वह महत्त्वपूर्ण हो जाती है। जैसे मणि-रत्न अपने आपमे अनुपम प्रभा और आभा से सम्पन्न होता है किन्तु जब वह स्वर्ण के साथ सयोजित होता है तो उसकी चमक-दमक कई गुणा वढ जाती है। उसी तरह शुद्ध हृदय मे स्थापित किया हुआ धर्म अलौकिक गुणो से मण्डित हो जाता है।

□□

१३०. जीवन में मोड़ कैसे और कब हो

जीवन कोमल रुई के समान है। कुशल कलाकार अपने पुरुषार्थ से जैसा वस्त्र का निर्माण करना चाहता है, वैसा उस रुई से वना लेता है। मिट्टी के मुलायम पिण्ड से कुम्भकार इच्छानुसार पात्रो का निर्माण कर लेता है। इसी तरह जीवन की प्रारम्भिक अवस्था मे जैसे सस्कार और जैसा वातावरण मिलता है, उसी के अनुसार जीवन का निर्माण हुआ करता है। कोमल वय मे पडे हुए सस्कार दिव्य-जीवन का निर्माण कर सकते हैं। कोमल लताओ को इच्छानुसार दिशा दी जा सकती है। कोमल वालको के जीवन को चाहे जिस दिशा मे मोडा जा सकता है। यदि उनके जीवन को भव्य और दिव्य वनाने की अभिलाषा हो तो उन्हे प्रारम्भ से ही भव्य और दिव्य सस्कार दिये जाने चाहिए। यदि आप अपने वालक को दिग्गज विद्वान् वनाना चाहते हैं तो प्रारम्भ से ही उसकी शिक्षा की ओर पर्याप्त ध्यान देना आवश्यक है। यदि आप उसे दिग्विजयी वीर वनाना चाहते हैं तो प्रारम्भ से ही उसके लिए व्यायाम आदि के सस्कार और साधन अपेक्षित होंगे। यदि आप अपनी सन्तति को आध्यात्मिक क्षेत्र की ओर अग्रसर करना चाहते हैं तो उसे वचपन से ही वैसे सस्कार देने होगे। जीवन एक उम्र तक मोड ले सकता है।

१३१. साधु-जीवन की गरिमा

इस बात को आप अन्य रीति से समझ सकते हैं। एक ऐसा व्यक्ति है जो अपनी परवाह किये बिना अपने परिवार की सेवा मे सलग्न रहता है। एक दूसरा व्यक्ति है, जो अपने परिवार की सेवा करने के साथ ही मौहल्ले और गाँव वालो की भी सेवा करता है। यह निर्विवाद है कि पहले व्यक्ति की अपेक्षा दूसरा व्यक्ति अधिक सेवाभावी माना जायेगा क्योकि उसकी सेवा का क्षेत्र अधिक व्यापक है। इससे आगे बढकर यदि कोई अपनी सेवा के क्षेत्र को राष्ट्रव्यापी बना लेता है तो वह और अधिक सेवाभावी समझा जायेगा। तो जिसने मानव मात्र ही नही, प्राणिमात्र की सेवा का व्रत लिया है, वह सर्वोत्तम सेवाभावी कहलाएगा। सतजन अपने सर्वजनहितकारी उपदेशो के द्वारा प्राणिमात्र का कल्याण करते हैं अतएव वे विश्व के परमोपकारी हैं। वे मानव-समाज के अद्वितीय सेवक और लोकहितकारी है। मानव-समाज के अभ्युदय मे और विश्व के वातावरण को शान्तिमय बनाने मे सतो का असाधारण योगदान है। अतएव समाज के लिए सत भारभूत नही हैं, अपितु आधारभूत हैं।

□□

१३२. अखूट खजाना

अध्यात्म आनन्द का अखूट खजाना है। अपने ही अन्दर आनन्द का अजस्र स्रोत बह रहा है, परन्तु अफसोस है कि मानव आनन्द पाने के लिए बाहर भटक रहा है। उसके पास सब कुछ होते हुए भी वह अपने को दरिद्र अनुभव कर रहा है। यह कैसी विडम्बना है कि अपने पास रही हुई वस्तु को मनुष्य बाहर ढूँढने का प्रयत्न कर रहा है। घर मे अखूट खजाना है परन्तु वह छिपा हुआ है। उसे ही अनावृत्त करने के लिए प्रयत्न होना चाहिए। जो वस्तु जहाँ है, वही वह प्राप्त हो सकती है, जो जहाँ नही है, वहाँ ढूँढने से वह प्राप्त नही हो सकती। आनन्द अन्दर रहा हुआ है। उसे अपने ही अन्दर खोजो, बाहर न भटको। चरित्रनिष्ठा के साथ अध्यात्म के सरोवर मे अवगाहन करो, सब पाप और ताप नष्ट हो जायेंगे और अलौकिक शाति प्राप्त होगी।

आप दृढ़ संकल्प करिये कि चाहे जैसी आँधी या तूफान हो, दृढ निष्ठा के साथ हमे चलना है, चरित्र को उज्ज्वल बनाना है और आत्मा की आवृत्त शक्तियों को अनावृत्त करना है।

१३३. घातक परिणाम मदिरा से

मदिरा के कारण देवनिर्मित द्वारिका नगरी आग की ज्वालाओ से जलकर राख हो गई। कितना घातक परिणाम होता है मदिरा-पान का।

यह कहते हुए बडा दु ख होता है कि आज के सभ्य कहे जाने वाले वर्ग मे भी मदिरापान का प्रचलन बडे पैमाने पर हो चला है। पहले तो निम्न समझी जाने वाली जातियो मे ही मदिरापान का प्रचलन था परन्तु अब तो इसने फैशन का रूप ले लिया है। समृद्ध और आधुनिकता की दृष्टि से प्रगतिशील समझे जाने वाले घरो मे मदिरापान का प्रवेश हो चुका है। स्कूल, कॉलेज और क्लबो मे मदिरा के दौर चलते हैं। उगती उम्र के नवयुवक और नवयुवतियाँ तथाकथित प्रगति और आधुनिकता की हवा मे बहकर इस दुर्व्यसन के शिकार बन जाते हैं। यह कितनी घातक प्रवृत्ति है?

सरकारी आँकडे यह बता रहे हैं कि मदिरा के द्वारा होने वाली राजकीय आय प्रति वर्ष कई गुना अधिक बढ रही है। यह इस बात का द्योतक है कि मदिरापान की प्रवृत्ति देश मे बढ रही है जो अत्यन्त घातक और हानिप्रद है।

भाइयो! यादवी राजकुमारों ने मदिरा-पान किया तो द्वारिका नगरी जलकर राख हो गई। इसी तरह मदिरापान की आदत कई घरो और परिवारो की सुख-शान्ति और समृद्धि मे आग लगा देती है। इस आदत के कारण कई परिवार बर्बाद हो गये है। उनकी सम्पत्ति मदिरा के ठेकेदारो की जेब मे चली जाती है। मदिरा के नशे मे चेतना भी गँवा देते हैं और सम्पत्ति से भी हाथ धो बैठते है। बाल-बच्चे, स्त्री आदि भयकर मुसीबत मे फँस जाते हैं। परिवार बर्बाद हो जाता है, नतीजा कुछ हासिल नही होता। अतएव मदिरापान की बुरी आदत से छुटकारा पाने से ही परिवार की सुख-शान्ति बनी रह सकती है। जीवन मे सुख-शान्ति का सचार और परिवार मे समृद्धि तभी तक सम्भव है जब तक मदिरापान की आदत न लगी हो। यह आदत एक बार पड जाती है तो वह घर और परिवार को बर्बाद किये बिना नही रहती। अतएव बुद्धिमानो और विवेक सम्पन्न व्यक्तियो का कर्त्तव्य है कि वे मद्यपान आदि दुर्व्यसनो से बचकर नैतिकतापूर्ण जीवन बितावें। ☐☐

१३४. स्त्री–पुरुष का भेद अपेक्षित नहीं

साधना के क्षेत्र मे स्त्री-पुरुष का भेद अपेक्षित नही है। साधना का सम्वन्ध मुख्यतया आत्मा के साथ है, शरीर के साथ नही। आत्मा न तो स्त्री है, न पुरुष अत पुरुषत्व का अभिमान वृथा है। संस्कृत के कवि ने कहा है :—

गुणा: पूजास्थान गुणिषु न च लिङ्ग न च वय : ।

गुणो का महत्त्व होता है। लिङ्ग या वय का विशेष महत्त्व नही। जिस प्रकार वस्त्रो का शरीर की शक्ति के साथ सम्वन्ध नही है, यदि पहलवान स्त्री-वेश धारण करले इससे उसकी शक्ति मे कोई अन्तर नही पड़ता, इसी प्रकार आत्मा के लिए स्त्री-पुरुष का शरीर वस्त्र-तुल्य है। स्त्री-शरीर हो या पुरुष-शरीर, इससे आत्मा की शक्ति मे कोई अन्तर नही आता है। पुरुषो के समान ही अनेक महिलाओ ने साधना के क्षेत्र मे अद्वितीय पौरुष वतला कर सिद्धि प्राप्त की है। आजकल तो प्राय: देखा जाता है कि पुरुषो की अपेक्षा महिलाएँ साधना के क्षेत्र मे, तपस्या के क्षेत्र मे, धर्म के मामलो मे विशेष प्रगतिशील हैं। यही नही सामाजिक, राजनैतिक एव राष्ट्रीय स्तर पर भी महिलाएँ विशेषता लिए हैं।

□ □ □

१३५. अष्ट कर्मों का राजा मोह

अनन्त ज्ञानी सर्वज्ञ सर्वदर्शी परमात्मा ने आत्मा के प्रवल विरोधी और प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी आठ कर्मों का निरूपण किया है। आत्मा की अनन्त शक्ति को प्रतिहत करने वाले ये वडे प्रवल हैं। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय—ये आठ कर्म आत्मा को अपने घेरे मे वद किये हुए हैं। स्वतन्त्र और सार्वभौम चेतनराज, पराये घर जाकर—पर परिणति मे पडकर—कर्मों के चगुल मे फस गया है। उसकी स्वतन्त्रता, सार्वभौमता, अनन्त शक्ति—सम्पन्नता छीन ली गई है। कर्म लुटेरो ने उसके वैभव को लूट लिया है। वह अभी दीन-हीन अवस्था मे कर्मो की कैद मे पराधीन दशा भोग रहा है। इन कर्म-लुटेरो का सरदार "मोह" वडा दुर्दान्त है। वह आठ कर्मों का राजा है। ससार मे इस मोहराज का वडा वर्चस्व है। चारो तरफ इसका प्रभाव फैला हुआ है। गजव की मोहिनी शक्ति है इस मोह मे। इसके वन्धनो को तोडना आसान नही, वहुत टेढी खीर है। दृढ फौलाद और लोहे की जजीरो को तोडना आसान है परन्तु मोह के कच्चे धागे को तोडना वहुत कठिन है। कैसी मोहिनी शक्ति है मोह की! अपने पराक्रम से धरातल को कपा देने वाले वडे-वडे शूर-वीर इस धरातल पर आये हैं, दुनिया मे उन्होने तहलका मचाया है परन्तु वे भी मोह की मोहिनी शक्ति के सामने श्वान की तरह दुम हिलाते रहे हैं।

मोह की प्रवल शक्ति का रहस्य उसका विकराल स्वरूप नही, अपितु उसकी सम्मोहनी शक्ति है, मोह के विविध मायावी स्वरूप हैं। इन मायावी लुभावने विविध रूपो से वह जगत के जीवो की—चेतन की— मति को भ्रान्त करता है। मति के भ्रान्त होते ही सव मिथ्या प्रतीति होने लगती है, वस्तु का स्वरूप भ्रान्त दिखाई देने लगता है—चेतन मिथ्यादृष्टि वन जाता है। उसकी निर्णायिका शक्ति लुप्त हो जाती है। वह सम्यक्-असम्यक् का निर्णय नही कर

पाता, कर्तव्य और अकर्तव्य का विवेक नही हो पाता । अतएव उसके सारे प्रयत्न विपरीत दिशा मे होते रहते हैं । अपने मूल स्वरूप के प्रति वह असावधान रहता है और पर-पदार्थों को प्राप्त करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहता है । यह मिथ्यादृष्टि ही उसे अनन्त-काल तक ससार चक्र मे परिभ्रमण कराती है । यह सब मोह की ही माया है । अतएव उसे सब कर्मों का राजा और ससार का मूल कहा जाता है ।

जिस प्रकार राजा के परास्त हो जाने पर सेना बिखर जाती है, उसी तरह मोहनीय कर्म के नष्ट हो जाने पर अन्य कर्म भी शिथिल पड जाते है । ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय कर्म रूप शेष बचे हुए घाती कर्म अन्तर्मुहूर्त मात्र समय मे नष्ट हो जाते है और आत्मा मे अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन और अनन्तशक्ति प्रकट हो जाती है ।

यह अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति ही आत्मा का अपने घर मे लौट आना है । अपनी स्वाभाविक स्थिति को पा लेना है । यही सब ससारी आत्माओ का लक्ष्य और साध्य है ।

१३६. सिक्के के दो पहलू

प्रवृत्ति और निवृत्ति, विधि और निषेध, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, या एक ही रथ के दो चक्र है । सिक्के के दोनो ओर कुछ अंकन किया हुआ होता है । दोनो ओर का अकन सही और ठीक-ठीक स्थिति मे होने पर ही सिक्का सही माना जाता है । उसकी दोनो बाजुए यथावत होने पर ही वह अपना सही मूल्य पाता है । यदि सिक्का एक तरफ से घिसा-पिटा हो तो वह अपना सही मूल्य नही पा सकता । एक चक्र के द्वारा रथ की गति सभव नही है । रथ के दोनो पहिये जब साथ-साथ घूमते हैं तब रथ की गति होती है और उसके द्वारा मजिल पर पहुँचा जा सकता है, इसी तरह प्रवृत्ति और निवृत्ति रूपी दोनो चक्रो से ही धर्म-रथ की गति हो सकती है । प्रवृत्ति और निवृत्ति एक ही धर्म रूपी सिक्के के दो पहलू है । एक के बिना दूसरा अपूर्ण है । ये दोनो एक दूसरे के पूरक होते हैं, विरोधी नही । अशुभ से हटना निवृत्ति है और शुभ में लगना प्रवृत्ति है । विधि प्रवृत्तिपरक है और निषेध निवृत्तिपरक । जब अशुभ से निवृत्ति की जाती है तो शुभ मे प्रवृत्ति होने पर अशुभ से निवृत्ति सहज हो जाती है । ये दोनो जीवन मे साथ-साथ चलते हैं ।

१३७. चेतन की विराट शक्ति

विराट चेतन-तत्त्व अपने आप मे परिपूर्ण है। उसे अन्य पदार्थों की कोई अपेक्षा नही रहती। अन्य पदार्थों की अपेक्षा उसी को रहती है जो स्वय परिपूर्ण न हो। जल की दृष्टि से समुद्र परिपूर्ण है, वह कूप-जल की या नदी के जल की आशा नही करता। यह वात दूसरी है कि समग्र जल स्वयमेव समुद्र की ओर चला आता है। समुद्र उसकी आकाक्षा या आशा नही रखता। वैसे ही विराट चेतन स्वत परिपूर्ण है अतएव वह अन्य किसी पदार्थ की अपेक्षा नही रखता। चेतन तत्त्व अपने भौतिक रूप मे स्वय प्रभु और सार्वभौम शक्ति-सम्पन्न है। परमात्मा की शक्ति से उसकी शक्ति किंचित् भी कम नही है। जिस तत्त्व मे ऐसी विराट शक्ति रही हुई है, उसके लिए तुच्छ भौतिक पदार्थों की लालसा कोई महत्त्व नही रखती। क्या सूर्य अपने प्रकाश को प्रकाशित करने के लिये मिट्टी के ढेलो की अपेक्षा रखता है ? क्या कभी वह पहाडो, चट्टानो या पृथ्वीतल की अन्य चीजो की आशा या अपेक्षा रखता हैं ? हर कोई जानता है कि सूर्य को इनकी अपेक्षा नही रहती। इसी तरह भव्य जनो को यह विश्वास होता है कि उनकी आत्मा सूर्य के प्रकाश से भी अधिक प्रकाश का पुज है। वह सूर्य से अधिक देदीप्यमान है। सूर्य का प्रकाश नियत क्षेत्र और नियत काल की परिधि मे सीमित होता है। समग्र लोक को वह प्रकाशित नही कर सकता। मध्यलोक के अमुक-अमुक क्षेत्र को ही वह आलोकित करता है लेकिन आत्मा की ज्ञान-रश्मिया न केवल मध्यलोक को अपितु ऊर्ध्व लोक और अधोलोक को भी आलोकित करती हैं। वे तीनो लोको के समग्र स्वरूप को प्रकाशित करने वाली हैं। लोक ही नही, लोक के समान असख्य या अनन्त लोक यदि अलोक मे भी हो तो उनको भी प्रकाशित करने की शक्ति—जानने की शक्ति—आत्मा मे है। इतनी विराट शक्ति का स्वामी यह चेतन-तत्त्व है। ऐसा विराट चेतन-तत्त्व भौतिक सारहीन पदार्थों की आशा करे, यह कितना हास्यास्पद है। उस आत्मशक्ति को जागृत करने के लिए अध्यात्म साधना आवश्यक है।

१३८. विश्वास फलदायक

आपको अपनी अनन्त शक्तियों पर दृढ विश्वास हो जाय तो निस्सदेह आप अनन्त शक्ति से सम्पन्न हो सकते हैं। इसके लिए आवश्यक है—दृढ आस्था, अडोल विश्वास और प्रवल संकल्प। सस्कृत की एक सूक्ति है— विश्वासो फलदायकः।

विश्वास फलदायक होता है। विश्वास के अभाव मे व्यक्ति किसी भी सफलता को प्राप्त नही कर सकता। विश्वास को लेकर चलने वाला व्यक्ति ही सफलता के शिखर पर पहुँचता है। अपनी आत्मा की विराट शक्ति के विश्वास का सवल लेकर यदि आप साधना के क्षेत्र मे आगे वढेंगे तो निस्सदेह आप अपनी छिपी हुई, दवी हुई शक्ति को प्रकट करने मे सफलता प्राप्त कर सकेंगे।

१३६. शिलाओं का भार : बनाम कर्मों का भार

मैं आपसे एक सीधा सा प्रश्न करूं । यदि कोई व्यक्ति किसी दुर्घटना के कारण पत्थर की शिला के नीचे दब जाय तो वह क्या करेगा ? आप चट उत्तर देंगे कि वह किसी भी तरीके से निकलने की कोशिश करेगा । यदि उसके हाथ खुले हैं तो उनसे शिला को हटाने का प्रयास करेगा । उस समय यदि कोई उसे कहे कि कलकत्ते से सोहन हलुवा आया है, अपने हाथो मे उसे ग्रहण करो । क्या वह व्यक्ति उस समय अपने हाथो को हलुआ ग्रहण करने मे लगाएगा या अपने पर पडी हुई शिला को हटाने के लिये हाथो का उपयोग करेगा ? स्पष्ट है कि वह पहले शिला को हटाने का प्रयास करेगा । वह जानता है कि शिला के नीचे अधिक समय तक दबे रहने पर प्राणो से हाथ धोना पडेगा । हलुआ तो यदि जीवित रहा, कई बार खाने को मिल सकेगा । उस समय न वह सिनेमा (चल-चित्र) देखना पसद करेगा और न वह पाचो इन्द्रियो को मनोज्ञ लगने वाले किसी पदार्थ के प्रति ललचाएगा । उस समय उसका एक ही मनोरथ है, एक ही दृष्टि है, एक ही साध्य है किसी तरह शिला को हटाना । वह अपनी समस्त शक्ति शिला को हटाने मे ही लगाएगा । यदि कदाचित ऐसा न करते हुए वह सोहन हलुआ खाने या मनोज्ञ रूप आदि देखने मे लग जाय तो आप उसे क्या कहेंगे ? मूर्ख ।

सचमुच यह मूर्खता ही होगी । अब जरा आप अपनी स्थिति का सिंहावलोकन करलें कि कही ऐसी गलती या मूर्खता हम से तो नही हो रही है । इस आत्मा पर बहुत भारी शिलाए पडी हुई हैं । ये शिलाए बाहरी नही है । बाहर की शिलाए तो दूसरो की सहायता मे भी हटाई जा सकती है परन्तु आत्मा पर पडी हुई आठ कर्मों की भारी शिलाओ को हटाने के लिये तो स्वय को ही पुरुषार्थ करना पडता है । दूसरा व्यक्ति निमित्त मात्र हो सकता है, उपादान नही ।

मुख्य रूप से अपना पुरुषार्थ ही अपने लिए कारगर हो सकता है। दूसरो की अपेक्षा रखने वाला व्यक्ति निर्बल और निराश होता है। अपने पुरुषार्थ पर भरोसा करने वाला व्यक्ति ही सफलता का वरण किया करता है। इन आठ कर्मो की शिलाओ को हटाने का काम आसान नही है। यह एक अत्यन्त कठिन कार्य है परन्तु प्रबल पुरुषार्थ के द्वारा साध्य है। यह आपका सद्भाग्य है कि आपकी पाचों इन्द्रियो की शक्ति मिली हुई है। आपके हाथ-पाव खुले हैं, आपका स्थूल औदारिक शरीर खुला हुआ है, केवल आत्मिक शक्ति शिलाओ से दबी हुई है। ऐसी स्थिति मे आप अपनी इन्द्रियो का, शरीर का और शरीर के अगोपागो का उपयोग आत्मा की कर्मों से दबी हुई शक्तियो को प्रकट करने मे करेंगे या खान-पान, नाच-गान मे लगायेंगे, यह बात मैं आपके विवेक पर छोडता हूं।

• • •

१४०. मिथ्या आरोप जघन्य अपराध है

कई अज्ञानी व्यक्ति अपने दोषो का तो विचार नही करते किन्तु दूसरो पर मिथ्या-दोषारोपण करते हुए नही शरमाते हैं। वे बिना सिर-पैर की बाते उड़ाने मे ही आनन्द का अनुभव करते हैं। दूसरे के हृदय मे तीर चुभाने मे उन्हे बडा मजा आता है. वे अज्ञानी यह नही सोचते कि इस दुष्कर्म का परिणाम बडा भयकर होता है। जो इस प्रकार दूसरो पर मिथ्या आरोप लगाता है, वह जघन्य अपराध करता है। शास्त्रकारो ने इसे भयकर पाप माना है। दूसरे के हृदय को छलनी बना देने के कारण यह भीषण हिंसा का कार्य माना गया है। फिर भी कई लोग अपनी आदत से बाज नही आते और "बारह हाथ की काकडी और तेरह हाथ का बीज" वाली कहावत चरितार्थ करते रहते हैं। ऐसे लोग समाज मे विष घोलते है। उनसे सावधान रहना चाहिए।

१४१. आश्रव को रोकिये

भाइयो, आत्मा की स्वच्छता के लिये यह आवश्यक है कि पहले आश्रव के द्वारो को रोका जाय। मान लीजिये, एक स्वच्छ जल का कु ड है लेकिन उसमे गटर की नाली का गदा पानी मिल रहा है। आप उसकी सफाई करना चाहते हैं तो पहले उस गटर की नाली को रोकना होगा। जब तक वह नाली गन्दा पानी कु ड मे डालती रहेगी, तब तक कु ड की सफाई नही हो सकती। ऐसे ही जब तक पापो के आश्रव-द्वारो को बन्द नही करेंगे, काम, क्रोध, मद, मोह, विषय-कषाय को नही छोड़ेगे तब तक आत्मा को स्वच्छ करने का प्रयास निरर्थक होगा। इसमे पाप की नालियो को रोकिये वैर-विरोध को भूल जाइये। सब जीवो के साथ मैत्री भाव रखिये। अन्त करण के विकारो को हटाइये। मन की मलिनता को धो डालिये। हृदय को साफ सुथरे दर्पण के समान स्वच्छ बना लीजिये। ऐसा करने से आत्मा पर पड़ी हुई पाप कर्मों की शिलाए हट जाएगी और आप एक अनूठा हल्कापन महसूस करेंगे। आपकी आत्मा उज्ज्वल बनेगी और तब आपको अपूर्व आनन्द की अनुभूति हो सकेगी।

□[

१४२. तीन प्रकार की मक्खियाँ

आप जानते हैं कि ससार में मक्खियो के कई प्रकार है किन्तु मुख्यतया तीन प्रकार की मक्खिया पाई जाती हैं। एक मक्खी का स्वभाव होता है कि वह नासिका के श्लेष्म पर ही बैठती है । उस श्लेष्म मे न तो मिठास होता है और न सुगध ही, तदपि वह मक्खी बार-बार उडाने पर भी श्लेष्म पर ही बैठती है । उसमे फस कर वह तडफ-तडफ कर मर जाती है, परन्तु उस श्लेष्म पर बैठना वह नही छोड़ती । दूसरी मक्खी स्वभावत. शहद पर बैठती है । वह शहद के मिठास पर ललचाती है और उस पर बैठती है । शहद का मिठास लेते-लेते वह मक्खी उसमे फस जाती है और अपने प्राणो को गवा बैठती है । इन दोनो प्रकार की मक्खियों मे स्वतत्र रूप से उडने की शक्ति होती है परतु आसक्ति के कारण ये उनमे लिप्त होकर अपनी जिन्दगी बरबाद कर देती है ।

एक तीसरे प्रकार की मक्खी होती है जो मिश्री की डली पर बैठती है । वह उस डली पर बैठ कर मिठास का आस्वादन करती है लेकिन जरासी ठेस लगते ही मिश्री का मोह छोडकर आकाश मे उड़ जाती है ।

इन तीनो प्रकार की मक्खियो मे से कौन सी मक्खी आप की दृष्टि से उत्तम है ? जो मिठाम लेकर उड जाय वह उत्तम है या मैल या शहद मे फसकर मर जाय वह अच्छी है ? आप सहज ही कह देंगे कि मिठास लेकर उड़ जाने वाली मक्खी अच्छी है ।

बन्धुओ ! मक्खियो के इस रूप को मानवों पर घटित कर शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये । अधिकाशतः मानव मैल की मक्खी की तरह ससार के विषय-कषायो मे फस कर अपने जीवन को बर्बाद कर रहे हैं । वे भिखमगो की तरह इधर-उधर भटकते रहेगे किन्तु त्यागमार्ग की ओर लगने की भावना उनमें जागृत नही होती । वे ससार के दुःखो मे फंस कर अपने जीवन को नष्ट कर डालते हैं ।

ससार के नाटक बडे विचित्र हैं। हमे तरह-तरह के सासारिक दु खो के किस्से सुनने को मिलते हैं सासारिक जन अपना दुखड़ा हमें सुनाते हैं। उनकी दयनीय दशा पर हमे तरस आती है। फिर भी वे लोग ससार के मायाजाल मे फसे रहते हैं। उनमे इतना सामर्थ्य नही जगता कि वे मायाजाल को छोडकर निवृत्ति के मार्ग पर आ जावें। कोई विरले ही व्यक्ति त्यागमार्ग के पथिक बनते हैं।

कई चक्रवर्ती सम्राट और धन वैभव से सम्पन्न व्यक्ति शहद की मक्खी की तरह सासारिक पदार्थों का आनन्द लेते जाते हुए उनमे फसकर आसक्त होकर मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। वे अन्त समय मे हाय-हाय करते रहे लेकिन विषयो के कीचड से ऊपर न आ सके।

मिश्री को मक्खी की तरह थे धन्ना और शालिभद्र। इनकी ऋद्धि-समृद्धि का कोई पार नही था तदपि समय आते ही ये आत्म-साधना के लिये निकल पड़े। वर्तमान में भी अनेक सत-सतीजी ऐसे हैं जो सासारिक मायाजाल को छोडकर सयम-मार्ग की निर्मल आराधना कर रहे हैं। आप मिश्री की डली पर बैठने वाली मक्खी से प्रेरणा लें और ससार के मायाजाल मे आसक्त न होते हुए आत्म-साधना के पथ पर अग्रसर बने।

१४३. ससीम और असीम

मनुष्य का मस्तिष्क सीमित है, सोचने की क्षमता अधूरी है और वह भी अनुभूतिपूर्वक प्राप्त की हुई नही है । अपूर्ण और सीमित शक्ति वाला मानव परिपूर्ण, असीम और अनुभवगम्य परमात्मा का चिन्तन भली-भाति नही कर पाता । मानव ससीम है, परमात्मा असीम है । मानव अपूर्ण है, परमात्मा पूर्ण है । मानव बिन्दु है, परमात्मा सिन्धु है । मानव, देश-काल की मर्यादाओ मे आवद्ध है, परमात्मा स्वतत्र है । मानव क्षुद्र है, परमात्मा विराट है । मानव स्थूल दृष्टि वाला है परमात्मा सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभव-गम्य है । ऐसी स्थिति मे परमात्मा का यथावत् निरूपण करना मानव की शक्ति से परे है । इसीलिये आचाराग सूत्र मे कहा गया है :—

"सव्वे सरा नियट्टन्ति"..... ....
"तक्का तत्थ न विज्जइ"... ....

शब्दो मे यह सामर्थ्य नही कि वे परमात्मा के सम्पूर्ण स्वरूप को व्यक्त कर सकें । वहाँ शब्दो की गति नही है । सब स्वर शान्त हो जाते हैं । तर्क की वहाँ पहुँच नही है । छद्मस्थ की बुद्धि उसे यथार्थ रूप मे ग्रहण नही कर सकती । विकल्पो का वह विषय नही । इसी बात को वैदिक ग्रन्थों मे भी इसी तरह प्रतिपादित किया गया है:—

"नेति नेति सब वेद पुकारें"

परमात्मा का स्वरूप "ऐसा नही है", "ऐसा नही है" इस रूप मे ही व्यक्त किया जा सकता है । "वह कैसा है ?" वह विषय शब्दो और विकल्पो की परिधि से बाहर है । वह केवल अनुभवगम्य है । गूगा व्यक्ति गुड के स्वाद का अनुभव कर सकता है, परन्तु उस स्वाद के स्वरूप का कथन नही कर सकता है । यही बात परमात्मा के यथावत् स्वरूप के निरूपण के सम्बन्ध मे समझनी चाहिए ।

१४४. नीतिमत्ता

आध्यात्मिक विकास के भवन का निर्माण नीति की नीव पर हुआ करता है। यदि जीवन मे नैतिकता नही है तो वहा आध्यात्मिकता आ ही नही सकती। नीति-रहित आध्यात्मिकता ढोग मात्र है। नैतिकता आध्यात्मिक जीवन की बुनियाद है। सम्यग्दृष्टि आत्मा यह मानती है और चाहती है कि उसका स्वय का जीवन नीतिमय हो और समाज मे सर्वत्र नीतिमय वातावरण हो। वह स्व-जीवन और जन-जीवन मे नैतिकता का भव्य रूप देखना चाहता है। जनता मे यदि नैतिकता है, यदि वह एक दूसरे से सहयोग कर ईमानदारी से चल रही है, तो सारा वातावरण शांतिमय होगा और ऐसे शान्त वातावरण मे समुचित रूप से आध्यात्मिक साधना सभव हो सकती है। अतएव सम्यग्दृष्टि साधक नीतिमत्ता को आत्म-विकास का अग मान कर चले।

१४५. रंगों की डिबिया में चित्र

रगो की डिबिया में विविध रग होते है और उनके माध्यम से चित्रकार विविध चित्रो का निर्माण करता है। इस अपेक्षा से कहा जाता है कि रगो की डिबिया में क्या-क्या नही है ? उसमें हाथी है, घोडा है, रथ है, पैदल है, दुनिया भर के चित्र उसमें सुरक्षित रूप से रहे हुए हैं, लेकिन चित्रकार जब तक तूलिका द्वारा चित्र बना कर नही बताता तब तक रगो का महत्त्व समझ मे नही आता। वैसे ही शास्त्रीय शब्दो में बहुत ही गूढ रहस्य रहे हुए हैं। उनको समझने और समझाने के लिये कुशल चित्रकार की तरह अन्तरग दृष्टि और अन्तरग कला की आवश्यकता है।

□□□

१४६. क्या समाज के लिये साधु भारभूत हैं?

आजकल वहुत से लोग यह कहते रहते हैं कि साधु सत जगत् को क्या देते हैं ? वे समाज के लिये भारभूत हैं। डाक्टर मनुष्यो के शरीर के रोग मिटाने की सेवा करता है, अतः आवश्यक है। वकील कानूनी उलझनो को मिटाते हैं, अतएव वे भी समाज के लिये उपयोगी हैं। अध्यापक छात्रो के मस्तिष्क का परिमार्जन करते हैं, अतएव वे भो समाज के अनिवार्य अग हैं। कृषक मानवों के लिये अन्न आदि उत्पन्न करते हैं, अतः उनकी आवश्यकता है। परन्तु साधु-संत समाज की क्या सेवा करते है ? न तो वे राष्ट्र को नेतृत्व प्रदान करते हैं, न शारीरिक चिकित्सा करते हैं, न अध्यापक की तरह छात्रो को परीक्षा मे उत्तीर्ण कराते है, न वकील की तरह कार्य करते हैं, न कृषक की तरह उत्पादन ही करते हैं तो साधु वर्ग की समाज को क्या आवश्यकता है ?

यह कथन वही व्यक्ति करता है, जिसके अन्तरंग नेत्र वन्द हैं। जिसके दृष्टिकोण मे स्थूल विषय ही आते है, जो कूपमण्डूक की तरह सकुचित होकर उसे ही सर्वस्व समझता है। यह दृष्टि का वैषम्य है, मिथ्यापन है। मिथ्या-दृष्टि केवल भौतिकता को ही देखता है, उसे ही परिपूर्ण समझता है। साधु-सत समाज को वह दिव्य दृष्टि प्रदान करते हैं जिसके प्रकाश मे वह कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय कर सकता हैं। जगत् के आगन मे शाति और सुख का सचार कर सकता है। सम्यक दृष्टि के अभाव मे ससार मे घोर सघर्ष हो सकता है, जगत् का वातावरण अशान्त, क्षुब्ध और विपाक्त हो सकता है। इस अर्थ मे साधु-सत समाज की जो सेवा करते हैं वह सर्वोत्कृष्ट सेवा है। इस तथ्य को कोई भी विवेकवान व्यक्ति चुनोती नही दे सकता।

१४७. अभाव के कारण-साधुजीवन नहीं

मुनि-जीवन कौन अगीकार करता है ? कई भाई कहा करते है कि जिन्हे कमाना नही आता, वे साधु वन जाते हैं ! यह कितनी तुच्छता भरी वात है । अरे ! निठल्ले तो बहुतेरे बैठे हैं, वे सवके सव साधु क्यो नही बन जाते ? लोग निकम्मे हो जाते हैं, वृद्धावस्था मे पहुच जाते हैं तो भी नासिका के मैल की मक्खी की तरह असंयमी जीवन से चिपके रहते हैं । जो पुण्यवान् आत्माए होती हैं वे ही त्याग के मार्ग पर अग्रसर होती हैं । साधारण लोगो की स्थिति तो ऐसी है कि २४ घन्टो के लिये भी वे मर्यादा मे नही रह पाते । पौषध करना या दया व्रत की आराधना करना भी उन्हे कठिन लगता है । अरे ! धन्ना, शालिभद्र जैसे ऋद्धिशाली व्यक्ति समय आने पर सव कुछ त्याग सयम-मार्ग पर चल पडे । इस प्रकार उन्होने अपना कल्याण कर लिया । अत. गरीवी आदि के कारण कोई दीक्षा लेता है, ऐसा कहना अपनी नासमझी का द्योतक है ।

१४८. द्रव्य-पर्याय

जव हम द्रव्य नय को लेकर वस्तु की विचारणा करते हैं तव वस्तु एक, नित्य और अखड प्रतीत होती है और जव पर्याय नय की दृष्टि को लेकर चलते हैं तो वस्तु अनेक, अनित्य और भिन्न-भिन्न प्रतीत होती है । इस द्रव्यार्थिक नय को लेकर सिद्ध-परमात्मा का स्वरूप एक, नित्य, अखण्ड दृष्टिगोचर होता है । उनमे नाम, जाति आदि विकल्प-भेद नही रहते । जव पर्याय नय की दृष्टि से विचार करते हैं तो सिद्ध परमात्मा मे नाम, गुण आदि को लेकर भिन्नता प्रतीत होती है। द्रव्य नित्य होता है, पर्याय परिवर्तनशील है ।

१४९. मोह की प्रगाढ़ निद्रा

आत्मा अपने मूल रूप मे स्फटिक मणि के समान निर्मल है परन्तु बाह्य उपाधियो को लेकर वह विकारी भावो से मलिन हो रही है। उस पर अनादि काल से कर्मों की परतें चढी हुई हैं। इनके कारण वह आत्मा ससार की विविध विडम्बनाओ का अनुभव करती हुई विभिन्न दशाओ को प्राप्त होती रहती है। विकारी भावो के कारण आत्मा की पवित्रता कलकित हुई, उसका चैतन्य अवरुद्ध हुआ, मोह-माया के बन्धनो मे वह कैद हुई और मोह की प्रगाढ निद्रा ने उस पर अपना आधिपत्य जमाया।

विकारी भावों से परिणत आत्मा की ज्ञान-ज्योति को मोह की काली घटाओ ने आवृत्त कर लिया, मोह की प्रगाढ निद्रा ने उसके सहज विवेक को विलुप्त कर दिया और मोह की मदिरा ने उसे उस स्थिति मे ला पटका, जहा वह अपना घर छोडकर दूसरे के घर को अपना मानने लगी, वह स्व तत्व को छोड़कर पर तत्व मे रमण करने लगी। वह अपने चैतन्य स्वरूप को छोडकर जड पुद्गलो की परिणति को अपना मानने लगी। यह शरीर मेरा है, यह भौतिक साधन-सामग्री मेरी है, मकान मेरा है, आभूषण और वस्त्र मेरे है। मोह की इस मादक मदिरा ने आत्मा को केवल बेभान ही नही बनाया वरन् उसे इतना सम्मोहित कर लिया कि उसे जड़ पुद्गल ही अच्छे लगने लगे, वह उनमे ही रमण करने लगी, पुद्गल ही पुद्गल उसकी दृष्टि मे चढने लगे, वह अपने स्वरूप को तो सर्वथा भूल ही गई। कितनी मादक है, यह मोह की मदिरा। बडी दुर्दशा की है इसने आत्मा की। अपना घर छोडकर जो दूसरे के घर मे जाता है, उसकी कैसी दुर्दशा होती है, यह आप सब समझते ही है।

आत्मा की इस दुर्दशा से मुक्ति तभी हो सकती है जब मोह की मदिरा का मादक प्रभाव दूर हो। जब आत्मा पर-भाव को छोड़कर स्व-भाव को समझने लगेगी, जब उसका पुद्गल के प्रति

सम्मोहन हटेगा, जब उसकी दृष्टि सही को समझने लगेगी, जब उसे अपने मूल स्वरूप का ध्यान आएगा, जब वह पुन. अपसे घर लौटेगी, तब वह दुर्दशा से छूट सकेगी। यदि आत्मा को इस दुर्दशा से छुटकारा पाना है तो उसे अपने घर आना पडेगा, पुद्गलो के सम्मोहन को भगाना पडेगा, मोह की प्रगाढ़ निद्रा को छोड़ना होगा और अपने मौलिक स्वरूप को पहचानना होगा, पौद्गलिक सम्मोहन के विरुद्ध सतत जागृति रखनी होगी। पूर्वाचार्यो ने इस जागृति का सदेश देते हुए कहा हैं ·—

जागरह ! णरा णिच्च
जागरमाणास्स वड्ढते बुद्धि

—बृहत् कल्पभाष्य

मनुष्यो ! जागो ! निद्रा को छोड़ो। जो जागता है, उसकी बुद्धि भी जागती है। उसके विकास की अनन्त सम्भावनाएं सामने खडी रहती हैं।

१५०. यथार्थ सत्य के ज्ञापक दो दृष्टिकोण-सामान्य और विशेष

प्रभु के स्वरूप को समझने के लिए एक दृष्टिकोण, दो धाराओ मे वह रहा है। एक सामान्य ज्ञान धारा (निराकार) और एक विशेष ज्ञान धारा (साकार)। निराकार की दृष्टि अनेक दृष्टियो से प्रतिवद्ध हो रही है। अभेद ग्राहक एक नय है, जिसको संग्रहनय कहते हैं। सग्रहनय की दृष्टि सामान्य को ग्रहण करती है, वह विशेष भेद नही करती है। सग्रह नय कहता है कि 'एगे आया' अर्थात् आत्मा एक है। आत्मा एक ही है, ऐसा वह नही कहता है। आत्मा एक है, इसमे सग्रहनय की दृष्टि है। अभेद नय से आत्मा के समग्र मौलिक तत्वो (गुणो) की दृष्टि से आप ऐसा कह सकते है—परन्तु समग्र दृष्टि से एक ही है यह गलत है। आत्मा अनेक भी है यह सत्य है। वैसे ही—'एगे सिद्धा' परमात्मा एक है।

यह अभेद दृष्टि है। अनन्त परमात्मा का एक सा स्वरूप आप सग्रहनय की दृष्टि से ग्रहण कर सकते हैं। इसलिए कि यह दृष्टि अभेद ग्राहक है। वह निराकार है, उसके स्वरूप का विश्लेषण नही कर सकते हैं, किन्तु सामान्य रूप से जान सकते हो, इसमे भेद नही हो सकता है। इसलिए वह निराकार दृष्टि है। जैसे मनुष्य जाति एक है। मनुष्य जाति, इस शब्द मे कौन मनुष्य बाकी रहेगा? हिन्दुस्तान के सभी मनुष्य आये या नही? क्या कोई बाकी रह गया? हिन्दुस्तान, पाकिस्तान, रूस, जर्मन, जापान, अमेरिका आदि कही का भी मनुष्य बाकी नही रहा। मनुष्य कहने से सबका ग्रहण हो गया। यह कथन सामान्य दृष्टि से, अभेद ग्राह्य दृष्टि से है। परन्तु जब मनुष्यो का भेद करेंगे तब व्यवहारनय की दृष्टि से भेद होगा। मनुष्य अनेक हैं तो उनकी आकृतिया भी अलग-अलग हैं। इसलिए मनुष्यो की गिनती होती है— एक, दो, तीन, चार आदि। मनुष्य एक है और अनेक है। एक मे सबका ग्रहण और अनेक मे सबका विभक्तीकरण है। सग्रहनय की दृष्टि से मनुष्य एक है, ऐसा कहना गलत नही है। इसी तरह सग्रहनय की दृष्टि से परमात्मा एक है, और व्यवहारनय की दृष्टि से अनेक है। अतः उसको निराकार और साकार कहेगे तो कोई द्वंद्व भेद नही होगा, और हम परमात्मा के स्वरूप को सही तरीके से समझ लेंगे, तभी आत्मा के स्वरूप को सही तरीके से समझ पायेगे।

□ □ □

१५१. स्वयं का पुरुषार्थ

एक व्यक्ति कमरा बद कर रजाई ओढे सो रहा है। वह आंखो पर पट्टी बाध लेता है और फिर चिल्लाता है कि इस कपड़े ने मेरी आंखे बाध दी हैं, रजाई ने मुझे पकड लिया है, कोई आकर मुझे बचाओ। अन्दर से साकल लगी हुई है। दूसरा व्यक्ति अन्दर नही जा सकता। बाहर से कोई व्यक्ति उसे सुझाव देता है कि अरे भाई। तुमने अन्दर से साकल लगा रखी है, रजाई तुमने ओढ रखी है। आखो पर पट्टी तुमने बाध रखी है। अपने हाथो से ही पट्टी ढीली करलो, रजाई फेंक दो, अन्दर की साकल खोल दो, बाहर की हवा लो, स्वयमेव तुम मुक्त हो जाओगे। वह कहता है कि मैं तो यह सब नही कर सकता, आप ही मेरी मदद कीजिये। ऐसे व्यक्ति के विषय मे आप क्या सोचेंगे ? यही न कि वह मूर्ख है। ठीक इसी तरह अपने-अपने कर्मों के आवरण को हम स्वयमेव हटाने मे समर्थ हैं, दूसरा कोई नही। दूसरा व्यक्ति केवल निमित्त बन सकता है। मूल काम तो हमे स्वय ही करना है। जिसने कर्म बाधें हैं, वही इन्हे तोडने की भी क्षमता रखता है। आप अनन्त शक्तिशाली हैं, आप मे अनन्त पौरुष है। आवश्यकता है केवल उसे प्रकट करने की। अतएव अपना उद्धार अपने ही हाथो मे है।

उद्धरेदात्मनात्मानम्

—गीता

अपने उद्धार का दायित्व हमारा ही है, अन्य किसी का नही।

१५२. जटायु की भक्ति

रामायण मे जटायु का प्रसंग आता है। रावण ने इस पक्षी के पंख उखाड़ दिये थे। सीता की खोज में जब पुरुषोत्तम राम उसके पास पहुचे तो उन्होने उसे गोद मे उठा लिया और कहा, "तूने अनीति का प्रतिकार किया, रावण के साथ संघर्ष में उसने तेरे पख उखाड़ दिये। तूने अपनी शक्ति के अनुसार बहुत वडा कार्य किया है। मैं तुझ से प्रसन्न हू। तू चाहे तो मैं तेरे सोने के पख लगा दूं और चाहे तो पहले जैसे ही पख लगा दू।"

जटायु ने गद्गद् होकर कहा—"प्रभो। मुझे न सोने के पख चाहिए और न पूर्ववत् पख ही। मुझे तो केवल आपकी गोद चाहिए और मैं उसी में अपने जीवन का अन्तिम क्षण बिताना चाहता हू"

वन्धुओ। जटायु जैसी भक्ति भावना आज के मनुष्यो मे अथवा भक्त कहे जाने वालो मे है क्या ? यदि जटायु के स्थान पर आज का मनुष्य हो और कोई उसे कहे कि भाई, मानलो यदि किसी ने तुम्हारे हाथ पांव तोड दिये तो क्या मैं सोने के हाथ-पाव लगा दू, कितने भाई तैयार हो जावेंगे ? लोग सोने के पीछे पागल हो रहे हैं परन्तु यह नही जानते कि पीछे भागने से सोना नही मिलता। छाया के पीछे ज्यो-ज्यो दौडा जाता है, त्यो-त्यों छाया आगे भागती है। छाया को पीछ छोड देते हैं तो वह अपनेआप पीछे भागती चली आती है। अतः व्यक्ति को चाहिये कि वह भौतिकता को पीठ देकर आध्यात्मिकता की ओर वढ़े, जिससे भौतिकता स्वतः ही छाया की तरह पीछे दौडती चली आएगी।